विपथगामी

श्रीगोपाल आचार्य

प्रकाशक
प्रवीण प्रकाशन
३२, डागा बिल्डिंग
बीकानेर

मूल्य ७)५० रु०

मुद्रक
एजूकेशनल प्रेस
फड़ बाजार बीकानेर

Vipathgami a novel by Shrigopal Acharya

Price Rs 7 50

'विपथगामी' आज से करीब दो दशक पहले लिखा हुआ मेरा तीसरा उपन्यास था। इसमें चित्रित पात्र विश्रृंखलित जीवन की सजीव मूर्तियां हैं जो शासन और समाज की अव्यवस्था बल्कि दुर्व्यवस्था व विषमताओं के कारण उद्देश्यहीन रह कर जीवन व्यतीत करते हैं। पात्रों में सजीव मानवीयता की झांकी सुलभ रूप से यदि पाठक पा सकें तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूंगा। मूल्य वस्था के अभाव में किस प्रकार प्रभावशील व कुशाग्र बुद्धि व्यक्ति भी विवश होकर विपथगामियों का जीवन व्यतीत करते हैं यही इस उपन्यास की कहानी है।

—श्रीगोपाल आचार्य

लेखक की अन्य रचनायें

- उपन्यास
  - मंजु
  - छाया पुरुष
  - निवसना
  - न्यायतीर्थ
  - आम्रपाली
  - न्यायमूर्ति
- कहानी-संग्रह
  - शपथ

विपथगामी

: १ :

किसी कार्यालय के एक बरामदे मे युवको की एक कतार सी लगी थी। सब के सब उमेदवार थे—एक नौकरी के लिए। कार्यालय के कमरे मे घटी बजी और सब के सब सावधान हो पक्तिबद्ध हो गए। इस समय अपने भावी भाग्यविधाता को प्रभावित करने की आशा मे प्राय सब ने अपने अपने चेहरो पर अपनी अपनी पसन्द की मुद्राए धारण कर ली थीं।

कमरे के द्वार पर एक मनुष्य मूर्ति बना खडा था। चपरासी मालूम होता था। अन्दर आन्ट होते ही इसने द्वार खीच कर खोल दिए। एक सज्जन बाहर हुए। हिन्दुस्तानी थे पर ठाट सब यूरोप का था। चमकते हुए बूट टो तक लटकती हुई रेशमी पेन्ट धारीदार डबल कफ कमीज बेशकीमती टाई—बस यही इस समय इनकी पोशाक थी। मुह मे एक सफेद सिगरेट और था जिससे धूम्रपान की अपनी आदत को वे प्रदर्शन कर रहे थे।

एक क्षण के लिए खडे होकर इन्होंने अपने सामने स्थित पक्ति की ओर देखा। सब के सब नतमस्तक थे। शायद शिष्टाचार मे। अपने मुह के धुए से नतमस्तको के अभिवादन का उत्तर देते हुए ये साहब पक्ति के एक छोर से दूसरे छोर तक एक को देखते हुए बढ गए। वहा पहुँचने पर इनकी दृष्टि क्षण एक के लिए शून्य मे स्थिर हो गई। मुह से धूम्रपान यथावत् जारी था। कुछ एक क्षण अपनी विचार मुद्रा मे स्थित रह कर ये वापिस अपने पूर्व स्थान पर लौट आए। सब को आशा थी कि अब साहब कुछ फरमायेंगे। उनके वक्तव्य की प्रतीक्षा मे एक स्तब्धता सी सब पर छा गई।

उम्मदवारों की आशाओं पर तो पानी ही फिर गया, जब साहब बिना कुछ कहे सुने ही वापिस अपने दफ्तर के कमरे में प्रविष्ट हो गये। कतार में स्थित बेकार अध्ययन चरित्र व उद्योग की मौन मूर्तियां मौन ही खड़ी रहीं। किसी के भी यौवन में उन्माद का उफान न आया। इतने में घंटी बजी। बेकार समाज की आंखें एक बार फिर कमरे के द्वार पर जा आरोपित हुईं। इस समय सब के चेहरों पर मुद्रित था एक ही प्रश्न, क्या? चाह थी एक आशापूर्ण उत्तर की।

एक अधेड़ पुरुष इतने में ही दफ्तर से बाहर हुआ बोला— साहब ने फरमाया है कि वह अफसोस है कि व आपकी दरख्वास्तों पर गौर नहीं फरमा सकते। अब आप

शेष शब्द मुंह में ही रहे। चपरासी के कर स्पर्श ने उसे और कहीं दूसरी ओर आकर्षित कर दिया था। उसने सुना— साहब याद फरमाते हैं।

और ठहरना अनुचित ही नहीं शायद खतरनाक भी था। इस लिये वह तुरंत दफ्तर में वापिस चल दिया। एक कदम ही अभी अन्दर रखा होगा, कि उसने सुना— श्यामलाल! आवाज साहब की थी। अधेड़ पुरुष साहब का रुख समझ कांप उठा। बोला— जी।

प्रश्न हुआ— तुम तो बेकार नहीं हो?'

'जी नहीं।' और आगे कहने की—कुछ कहने की,—उसकी हिम्मत न हुई। सिर्फ सुनने के लिये उसने अपने भाव को संयत कर रखा था। कोई कुछ भी कहे वह सब कुछ सुन सकता था।

'फिर?' श्यामलाल के लिये शायद प्रश्न स्पष्ट न था। दीन भाव से उसने निवेदन किया—"जी?"

'जी क्या मतलब रखती है?' साहब कड़क कर बोले। साथ ही उनकी बन्द मुट्ठी मेज पर जोर से गिरी। श्यामलाल का सारा शरीर

अपनी प्रतिक्रिया से कंपित हो उठा। कुछ पसीना भी आ गया। बोला— 'माफी चाहता हूं।' श्यामलाल की आवाज अब तक दब गई थी। और अधिक उससे कुछ भी कहते न बना। बात उसकी समझ के बाहर हो गई थी। पुनः प्रश्न हुआ —

'किसलिये ?

श्यामलाल के लिये समस्या कुछ और कठिन हो चली। उसकी बुद्धि ने आगे काम न दिया। प्रथम उत्तर भी तो उसने प्रश्न को बिना समझे ही तो दे दिया था। बोला —' मैं समझा नहीं जनाब !

'मैं पूछता हूं तुम तो बेकार नहीं हो ?'

जी नहीं। वही प्रश्न—वही उत्तर। श्यामलाल को भय लग रहा था। इसी बीच उसने सुना— बेकार होना चाहते हो ?

सुनकर श्यामलाल के शरीर में से बिजली सी दौड़ गई। मस्तिष्क ने तो अपना काम ही बन्द कर लिया। अंग्रेजी राज्य, बीसवीं सदी पग पग पर पुलिस बात बात में कानून और फिर बेकारी—परमात्मा बचाये। जमाने की दुर्दशा का सारा चित्र उसकी आंखों के आगे आ गया। बिचारा गिड़गिड़ा कर दीन भाव से बोला— जी नहीं।"

'जानते हो यह दफ्तर है ?'

'जी।'

'फिर इस पोशाक में यहाँ क्यों आ गये ?

कार्यालय का यह कर्मचारी अपने साहब के स्वभाव से सुपरिचित था। उसे मालूम था कि कोई भी कैसा ही उत्तर यहां किसी भी समय बहस का तारीफ में लिया जा सकता है। यही सोच बेचारे इस दफ्तर के मुनी ने मौन धारण कर ली। मार खाने के इन्तजार में हाथ बांधे मूर्तिवत् वह खड़ा रह गया। साहब का रुख अब भी बदला नहीं था। उन्होंने पूछा —

क्या कहते हो ?

गलती हो गई।'

'ठीक होगी या नही ?

आयन्दा नही आऊगा।

'और आज ? —परिस्थिति को समझ कर उसने उत्तर दिया—बदल आऊगा।

'जाओ। परन्तु, याद रखो आयन्दा एसी बदतमीजी माफ नहीं होगी। इस दफ्तर की शान की हतक मैं बर्दाश्त नही करूगा।

आज्ञा मिलते ही मुशी श्यामलाल कमरे के बाहर आ गया। साहब के दफ्तर से बाहर निकल कर ही उसने स्वतन्त्र सास ली। उसने जब से रुमाल निकाला। स्थिर चित्त होने के लिये पसीना पोछा और फिर खडे होकर दम लेने लगा।

अब तक उम्मेदवारो की वह पक्ति टूट चुकी थी। आगन्तुक युवक बिखर गये थे। मगर कुछ एक बरामदे म अब भी किसी आशा म चक्कर लगा रहे थे। मुशी ने बाहर आकर इन्हे भी इशारे से आखिरी उत्तर दे दिया।

कुछ एक क्षण खड होकर श्यामलाल ने अपनी स्थिति समाली कुछ प्रकृतिस्थ हुआ। फिर कुछ सोचा। कुछ भी समझ म न आया कि उसके साहब को भारतीय वेश-भूषा से इस कदर चिढ क्यो है। खर, अभी वह द्वार पर ही खडा था कि उसने सुना– बवकूफ ! और दूसरे वे जो यह भी नही जानते, कि किसी भली जगह किस तरह आना जाना चाहिये। चले आय धोती कुर्ते मे चप्पलो से कीचड उछालते। कपडे पहनने तक की ता तमीज नही और द दो इन्हे नौकरी !'

सुन कर श्यामलाल के चेहरे पर क्षोभ और विषाद की रेखाए

लिच आई। मगर नौकर ही तो था। क्या कह सकता था ? क्या कर सकता था ? रेखाओ से विकृत अपने चेहरे को एक क्षोभमयी छाया से आच्छादित कर वह वहा से चल दिया। इतनी सी ही उसके हाथ की बात

मुन्शी श्यामलाल कार्यालय की पैड़िया उतरने लगा। उसके आगे एक युवक और जा रहा था। पोशाक म चप्पल, धोती और कुर्ता थे। मस्तक नीचे था। गोरे सुडोल शरीर पर अप्रसन्नता की प्रतिक्रिया छा गई थी जिससे चेहरे की चमक मे कुछ फीकापन आ गया था। इस व्यक्ति का तीन चार पडो ही और उतरना शेष रहा था कि इसकी दृष्टि सामने से आते हुये एक साहवी युवक पर पड़ी। हाथ घडी को देखता हुआ यह युवक अपने ध्यान म इसी कार्यालय की पैड़िया चढ रहा था। इस देखकर उतरनेवाले को हल्की सी एक हसी आ गई। रास्ता रोक कर बोला—

चले चलिये।

'अजीत! —चढनेवाले न कुछ विस्मित होकर कहा।

"कहता हूँ चले चलिये।

'क्या हुआ ?

"जो हमेशा होता है।'

फिर भी ?'

'पूरी 'परेड' करा के कहला दिया '

कि चल आओ। यही न ?'

'नही, इतनी मेहरबानी तो नही की।"

'फिर ?

इतने म ही मुन्शी श्यामलाल इनके पास से निकला। अजीत इसे देखकर बोला— 'आपसे पूछिये। आप ही अपने साहब के प्रतिनिधि थे।'

सुन कर श्यामलाल कट-सा गया। मगर, बोला कुछ नहीं। सिर्फ अपना मुँह बना अपने गाल थप भर लिया। अजीत ने कहा— प्रतिनिधि साहब बोले—साहब ने फरमाया है कि उन्हें अफसोस है कि वे आपकी दरख्वास्तों पर गौर नहीं करमा सकते।

किसी को नहीं लिया?

एक को भी नहीं।'

क्यों?

इसका उत्तर पा सकने का वह पात्र नहीं था।

न कुछ कहा?

जी नहीं।

उत्तर में व्यंग्य स्पष्ट था।

अच्छा मनहूस था। घर चला पीछा छूटा। समय पर पहुँचे नहीं, इसका अब अफसोस नहीं है।

नवागन्तुक अपने साथी के साथ वापिस लौट चला। अब आखिरी पैड़ी उतर कर दोनों सड़क पर आ गये।

अजीत ने पूछा— 'और भी कहीं जाना है?

आज की खोज तो इतनी ही थी। पत्रों में कोशिश के लिये कहीं गुंजाइश ही नहीं है। कुछ ठहरकर बोला—तुम्हारे बी ए पास का यह नतीजा है।

'और तुम्हारे एम ए पास का नहीं? —साथ ही दोनों हँस पड़े। विश्वविद्यालय की महंगी डिग्रियों व शायद सस्तेपन पर हँसते हुये दो एक कदम दोनों साथ साथ बढ़े।

नवागन्तुक ने अपने मित्र को सिगरेट पेश करते हुए कहा—

सनाई ?'

परतु उसने सुना— दुकान मे ?"

पैसा ?"

"तिजोरी म ।"

'और जेब म ?

"बिल्कुल नही '—साथ ही एक हल्की हसी म उत्तरदाता ने अपनी सम्पन्नता का भान दूसरे को दे दिया । इधर उधर नजर दौडा कर दोनो एक दुकान की ओर चल दिय जहा एक लम्बी सी बत्ती सुलग रही थी । सडक के वायुओ की निरन्तर माग से अपने को बचाने के लिये हर समझ दार सिलाई सिगरेट विक्रेता इस सस्ते सामान को अपनी दुकान पर खोल रखता है । यहा पहुचने पर अजीत और उसके मित्र की मुश्किल आसान हो गई । सिगरेटें सुलगते ही दोनो ने विदासूचक हाथ उठाये और फिर वे अपने अपने रास्ते चल दिये ।

अजीत का मित्र अजीत से अलग होकर एक वाचनालय म जा बैठा । इस वाचनालय मे बठे बैठे ही उसने सध्या कर दी । अब तक आठ बज गये थ । समस्त पाठकगण उठ बैठे और अन्य पाठकों के साथ वह भी सीढियों से सडक पर उतर आया ।

सडक पर सवार और सवारियो की प्रदर्शनी सी लग रही थी । भिन्न भिन्न वेशधारी सवार विभिन्न प्रकार से आभूषित थे । उनम उन्ह देखा । नर नारी ही थे । वह देखने लगा । एकाएक उसकी दृष्टि एक सवारी पर जा आरोपित हुई । उसे ही वह देखता रहा । इस समय उसका मुख विकृत हो चला । चेहरे पर एक भावमयी छाया-युक्त कहानी सी चित्रित हुई । मुह मे शब्द निकला— छि' और साथ ही उस दृश्य पर से दृष्टि उसने हटा ली । और अधिक उधर वह न देख सका । उसी क्षण नत मस्तक हो होठ चबाता हुआ वह एक ओर चल दिया ।

शहर की बाहरी बस्ती में उसका मकान था। उसी द्वार लग्न कारण उसे घर लौटना था। रात्रि के एक बजे प्रहर में पता करके वह वहाँ पहुँचा। द्वार बन्द थे। आवाज की– बाबू ! बाबा घर की शान्ति एक सविता थी। द्वार खोल लौट तब तक उसने सुना किरण बाबू ! आवाज आने में जित परिचित थी।

क्या है ? —किरण ने जवाब में कहा।

आपने बुलाया था।

इस समय ?

मैं अभी आ बैठा हूँ।

'भले आदमियों के घर आने का यह समय है ?

'और समय आप मिलते भी तो नहीं हैं।

कहाँ चला जाता हूँ ?

यह तो आप जानें। दिन में कई बार दफा आया हूँ पर आपके दर्शन तो नहीं हुए।

'मुझे फिजूल की बातों से कोई मतलब नहीं। मैं बाबू आदमी हूँ। सेठ के आदमी के लिए हर समय मेरा फालतू नहीं बैठा रह सकता।

मुझे इस समय क्या कहते हैं ?'

'अभी सुना नहीं ? भले आदमियों के घर आने का यह समय नहीं है।

"सुबह आऊँ ? आगन्तुक ने ज्वालामुखी किरण को विस्फोट से बचाते हुए कहा।

'आ सकते हो।

आगन्तुक अपना सा मुँह लेकर लौट गया। फिर आवाज हुई—

विपथगामी

'आशा !"

आशा ने द्वार खोल दिए। आगन्तुक को आया देख अब तक वह अन्दर ही खड़ी हो गई थी।

'अभी तक अकेली ही हो ?'

"जी।"

'वो कहां गई ?

"मरीज देखने।"

अभी तक उसका मरीज मरा नहीं ? साथ ही किरण के मुंह पर सूखी हंसी दौड़ गई। आशा चुप रही। घर के इस मालिक के मुंह में अनेक अवसरों पर ऐसी उक्तियां सुनने का उसे अनुभव था। वह जानती थी कि किरण बाबू की इस हंसी में विपने व्यंग के सिवाय और कुछ भी नहीं है। आज आसार अच्छे नहीं थे। अच्छा था, कि मालकिन इस समय घर में नहीं थी।

किवाड़ बन्द कर लिए गए। किरण ने कपड़े उतारे। आशा ने धोती, तौलिया स्नानघर में रख दिए। स्वयं आना के इन्तजार में एक तरफ आसपास कहीं बैठ गई।

किरण ने स्नान करते हुए पूछा—'कब गई थी ?'

'देरी हो गई।'

'और आयगी कब ? उत्तर के पहले वह स्वयं ही बोल पड़ा— कौन जाने ? क्यों ?" आशा ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसके मुंह में शब्द निकले 'कौन जाने कब आये ? मगर आशा की चुप्पी को देख कर किरण ने फिर पूछा— नहीं जानती ?

जी नहीं।"

'औरत होकर औरत की बात नहीं जानती आशा !"

बल्कि, भीषण विषयुक्त बाण थे। किरण के हृदय पर बहुत गहरी चोट पहुँची। उनकी अग्नि युक्त विषमय ज्वाला से उसका समस्त हृदय झुलस गया। तीव्र शब्द वह कर इस प्रकार कमरे में प्रवेश कर जाने की बेरुखी तो किरण के लिए इस समय असह्य थी। परन्तु विशेष परिस्थिति में इन्सान को असह्य भी सह्य होना होता है। किरण मर्माहत हो चुप रहा। उसकी इस चुप्पी में सागर की सी शान्ति थी। शायद इसका वह अभ्यस्त हो चुका था। भावुक किरण की चुप्पी पर आशा विस्मित हुई पर उसका विस्मित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि उसे किरण के संग का अनुभव प्राप्त था। अनेक बार उसने देखा था कि किरण की भावुकता उसे चुप नहीं रहने देती। आज उसे उसके स्वभाव में परिवर्तन मालूम दिया।

किरण स्नान समाप्त कर आशा को पानी के लिए कह स्वयं भी उसी कमरे में चला गया। कमरे के एक तरफ श्रीमती किरण मुंह फुलाए हुए अखबार देख रही थी। स्नान कर लेने से शायद किरण कुछ शान्त हो गया था। बोला — स्नान नहीं करोगी ?

नहीं।'

'और खाना ?'

श्रीमती ने अखबार पर से आंख उठा कर किरण की ओर देखा। किरण को हंसी आ गई। वास्तव में वह जान बूझ कर हंसा था। वर्तमान गंभीर वातावरण को किसी नाजुक परिस्थिति में परिवर्तित न होने देने की ही चाह इस समय उसकी थी। किरण ने देखा कि उसकी जीवन संगिनी की आंखों में किसी भीषण संघर्ष का संकेत है। उसकी आन्तरिक उद्विग्नता उसके दृष्टिपात से स्पष्ट थी। परन्तु, वह संघर्ष से बचना चाहता था। बहुत बुद्धिमान बनने की कोशिश में इस समय वह संलग्न था कि श्रीमती जी के मुंह से शब्द निकले— मेरा खाना और मुझे बन्द करोगे ?'

पल भर म ही हमी का भावरण किरण क चहरे स दूर हट गया। बोला— छाया !

किरण के मु ह से यह कोई शब्द नही निकला या बल्कि किसी ज्वालामुखी का विस्फोट सा हुआ था। और आगे शब्द उसके मु ह स बाहर न हुए। उसका चेहरा तमतमा गया आखो म आग बरसने लगी, शरीर थर थर कापने लगा। छाया न आखें फर ली।

किरण छाया की तरफ एक कदम बढा भी मगर फिर रुक गया। उसके हृदय म भयकर आधी उठ रही थी। विरोधी भाव पारस्परिक सघष सलग्न थे। चाहता था कि आज ही सब समाप्त कर डाले मगर फिर कुछ सोचकर उसने उस दिशा म कदम न बढाए। आनी विवशता ने उसे पुन सभाल लिया।

'छि'—क्षीण स्वर म एक आवाज उसके मु ह स फिर बाहर निकली और वह लौट गया। इस छि की पृष्ठभूमि बहुत ही करुणाजनक थी और इससे किरण की आतरिक उथल पुथल का ददनाक दृश्य दृष्टि गोचर होता था। इस एक शब्द मे किरण के मानव हृदय म उठने वाले मान अपमान घृणा प्रेम भय अभय शक्ति अशक्ति आदि भावनाओ की गहराई का सकेत मिलता था। छाया ने दृष्टि उठाई ही नही। न बोली न किरण की ओर देखा ही।—शायद किरण उसके लिए इस समय सबोधन का पात्र नही था।

किरण कमरे से बाहर निकल आया। उसकी प्यास बुझ चुकी थी। क्षुधा भी शायद शान्त हो चुकी थी। अपनी उद्विग्नता म वह चारपाई पर लेट गया और अनन्त आकाश मे जलते हुए तारों को देखने लगा। आशा पानी लेकर आई मगर उसने उसे लौटा दिया। आकाश के अनन्त अधकार म एकटक उसकी आखें आरोपित थी। अतीत की जीवन कहानी इस अवसर पर शायद सजग हो उठी थी। उसी मे वह डूब रहा था। अपने

भावों के संकेत स्पष्ट थे और क्षीण हंसी कभी कभी उनके मुंह पर और स्फुटित हो पड़ते थे।

अखबार तो छाया के लिए वहां बैठने का एक बहाना मात्र था। किरण के चले जाने पर जब वह अपनी जगह से उठी, उसकी आखें आसुओं से सजल थीं। दोनों का पारस्परिक रोष जीवन की कटुता, परिस्थितियों की विवशता शब्दों में प्रकट हो चुकी थी।

छाया ने कपड़े बदले और वह भी मौन मूर्ति बन एक चारपाई पर जा पड़ी। दोनों का खाना आज यथावत् रसोई में ही सजा पड़ा रह गया।

पल भर म ही हसी का ग्रावरण किरण के चेहरे म दूर हट गया। बोला— छाया !"

किरण के मुह से यह कोई शब्द नही निकला था बल्कि किसी ज्वालामुखी का विस्फोट सा हुग्रा था। ग्रौर ग्रागे शब्द उसके मुह से बाहर न हुए। उसका चेहरा तमतमा गया ग्राखो से ग्राग बरसने लगी शरीर थर थर कापने लगा। छाया ने ग्राखें फेर ली।

किरण छाया की तरफ एक कदम बढा भी मगर फिर रुक गया। उसके हृदय म भयकर ग्राधी उठ रही थी। विरोधी भाव पारस्परिक सघष सलग्न थे। चाहता था कि ग्राज ही सब समाप्त कर डाले मगर फिर कुछ सोचकर उसने उस दिशा म कदम न बढाए। ग्रपनी विवशता ने उसे पुन सभाल लिया।

छि —क्षीण स्वर म एक ग्रावाज उसके मुह से फिर बाहर निकली ग्रौर वह लौट गया। इस छि की पृष्ठभूमि बहुत ही करुणाजनक थी ग्रौर इससे किरण की ग्रातरिक उथल पुथल का ददनाक दृश्य दृष्टि गोचर होता था। इस एक शब्द मे किरण के मानव हृदय म उठने वाले मान ग्रपमान घृणा प्रेम भय ग्रभय शक्ति ग्रशक्ति ग्रादि भावनाग्रो की गहराई का सकेत मिलता था। छाया ने दृष्टि उठाई ही नही। न बोली न किरण की ग्रोर देखा ही।—शायद किरण उसके लिए इस समय सबोधन का पात्र नहीं था।

किरण कमरे से बाहर निकल आया। उसकी प्यास बुझ चुकी था। क्षुधा भी शायद शात हो चुकी थी। ग्रपनी उद्विग्नता म वह चारपाई पर लेट गया ग्रौर ग्रनत ग्राकाश म जलते हुए तारों को देखने लगा। आशा पानी लेकर आई मगर उसने उसे लौटा दिया। ग्राकाश के ग्रनन्त ग्रधकार म एकटक उसकी ग्राखें ग्रारोपित थी। ग्रतीत की जीवन कहानी इस ग्रवसर पर शायद सजग हो उठी था। उसी म वह डूब रहा था। ग्रपने

: २ :

कलकत्ते जैसे शहरों में कबाड़ियों की कमी नहीं है। ये लोग बाजारों में बैठ कर पुरानी वस्तुओं के क्रय विक्रय का व्यापार करते हैं। कोई भी वस्तु उनकी कीमत पर उन्हें चाहे जब बेची जा सकती है।

अगले दिन किरण को कुछ रुपयों की आवश्यकता पड़ी। अपनी पत्नी की कमाई में जो कुछ भी उसका सीमित असीमित अधिकार था उससे लाभ उठाना उसने उचित न समझा। क्या करे? यही सोच रहा था कि उसकी दृष्टि अपने वाद्य यन्त्रों पर जा लगी। इसके साथ ही उसे खयाल हो आया कि इन्हें उसने एक कबाड़ी से अर्सा हुआ खरीदा था। कुछ क्षण के लिए वह विचार-मग्न हो इन संगीत के साजों को देखता रहा। समस्या शायद सुलझ सी गई थी।

अभी गृहस्वामिनी छाया अपनी नौकरी पर नहीं गई थी। उसके जाने की प्रतीक्षा में गृहस्वामी इधर उधर करके समय बिताने लगा। इस अर्से में उसने प्राय वस्तुओं को ठीक कर लिया जिनके बिना वह काम चला सकता था।

घड़ियाल के आठ बजाते बजाते छाया तैयार होकर चल दी। आज उसने नाश्ता चाय पानी कुछ भी नहीं लिया। उसकी सूरत से इस समय स्पष्टतया झलकता था कि किसी दारुण दुख की भीषण छाया उस पर अपना अधिकार जमाए हुए है। जाते हुए आगा को एक ओर सरकार बाबू के लिए चाय आदि का प्रबंध कर देने का आदेश वह अवश्य कर गई थी।

छाया के बाहर जाते ही किरण ने अपना अनावश्यक साज-सामान सभाला। सिवाय च मे घड़ी और फाउटन पेन के शायद ही उसने अपनी कोई एसी वस्तु छोडी जो उस अनावश्यक सूची मे न हो। बासुरी, तबला सितार वेला, किताबें टोच स्टिक रैकेट सभी उसन उस सूची म सम्मिलित कर लिए। अपनी अगुली की अगूठी पर भी इस समय उसकी दृष्टि गई मगर न जाने उसने उसे क्यो बिक्री के उपयुक्त न समझा। सभव है, कि वह इस पर अपना अधिकार न समझता हो।

अभी किरण अपनी आखिरी तैयारी मे ही सलग्न था, कि आशा नाश्ता लेकर आ खडी हुई। किरण ने उससे रकाबी रखा ली और उसे आज्ञा दी कि वह चाय तैयार करके अस्पताल ले जाय।

आशा आज्ञा पाकर उसके पालन मे व्यस्त हुई। उधर किरण सडक पर से 'रिक्शा ले आया। आशा क अस्पताल की ओर कूच करते ही उसने अपने कला अध्ययन और खेल के जनाजे को उठा कर उस हाथ-गाडी म रख दिया और बात की बात म घर के ताला लगा कर उसे फूकने के लिये भी चल दिया।

सव प्रथम उसने किताबें बेची। वे ही आसानी से बिक सकती थी। उन्ह अलग कर देने से उसे करीब पचास रुपये मिल गए। रुपय लेकर सबसे पहले उसने सवारी बदली। पैसे देकर भी मानव से पशु का काम लेना न जाने कोई कोई व्यक्ति क्यो नही पसन्द करता है। रिक्शा-वाले को मागे से दूना देकर किरण ने अपनी आतरिक ग्लानि से छुटकारा पाना चाहा। यदि इसके पहले उसके पास पैसे होत अथवा किसी और सवारी की चाहे जसी छोटी बडी जगह में जाने व ठहरने की क्षमता होती तो निश्चय ही वह अपने लिए आत्मग्लानि का इस कदर शिकार होने का सामान न करता। कबाडियों के हाथ बाकी चीजें भी इसी तरह फूक दी गई।

"पागल हो गये हो। मेरी तरह बीमार पड़ते तो ऐसा नहीं कहते।'

'घर की बजाय अस्पताल और धर्मशाला में मरना ज्यादा अच्छा है। घर से तो गली भी अच्छी। किरण की आंतरिक वेदना गात गात स्फुरित हो रही थी।

"फिर मुझे भी किसी अच्छी जगह ही ले चलो न।" साथ ही केदार बाबू ने थोड़ा-सा हंस भी दिया।

"तुम मतलब नहीं समझे। और फिर तुम्हारा यह स्थान तो घर भी नहीं—धर्मशाला है। घर में एक औरत का होना आवश्यक होता है केदार बाबू। साथ ही उसके होठों से भी एक क्षीण हंसी बाहर निकल पड़ी।"

"घर-गृहस्थी तुम्हें पसन्द नहीं ?'

'ना'

'फिर श्रीमती छाया को क्यों फंसाया ?

'वह फंसी क्यों ?' किरण को इस मौके पर एक कृत्रिम हंसी का आसरा लेना पड़ा।

"यही तुम्हारी जिम्मेवारी है ?' क्या ?

"मैं स्पष्ट-वक्ता हूं भाई। अपने से कुछ छिपाया नहीं जाता। आदमी, सच पूछो तो अकेला ही अच्छा रहता है। शादी वादी सब झगड़ा है।"

"तुम ऐसा क्या कहते हो ? श्रीमती छाया तो एक बहुत ही सुसभ्य महिला हैं।'

'मैं छाया की बात नहीं करता। मैं सिद्धान्त की बात कहता हूं। छाया तो मुझे मिल गई। दुनिया में बाकी सब को तो छाया नहीं

'थोडी बहुत ?

'बिल्कुल नही।' ऐसे मौको पर तुम्हारे जसा फायदे म रहता है किरण बाबू।' साथ ही एक क्षीण हसी उसके होठो स बाहर निकल गई।

'और दूसरे मौकों पर ?'

दूसरे मौको पर भी।"

'दूर के ढोल सुहावने लगते हैं केदार बाबू। ऊची दुकान फीके पकवान की उक्ति असत्य नही है। तुम अभी नही समझते। पढ़ी-लिखी अपढ़ औरत स गाव की गोबर ढोनेवाली कही ज्यादा अच्छी है।"

'पढ़ी लिखी पाकर तुम्हे सन्तोष नही ?

मरी बात छोडो। सब औरतें एकसी नही होती। पढी लिखा भी कोई अच्छी निकल जाती है, परन्तु सब नही।' किरण मु ह पर बात लाकर छिपा गया। मगर इस तरह छिपाना छिपाने की चेष्टा मात्र थी। थोडी देर बाद वह फिर बोला—पुरुष पसे का मोहताज नही होता केदार बाबू। वह पसे को कमाता है पसा उसे नही। कमजोर मानव की यह आदत होती है कि वह अपने अभाव को अभावहीन की भाषा में ही व्यक्त करता है। किरण के लिए तो पैसे की समस्या स्पष्ट थी ही। वकील महोदय ने सुना—'कुछ अच्छा नही। फिर भी अच्छा ही है। शादी के पहले मैं ज्यादा अच्छा था। आकाश के स्वतंत्र पक्षी की तरह चाहे जहा घूम फिर सकता था।' किरण के द्वारा बोले हुए वाक्यों का सम्बन्ध वह परस्पर जोड न पाया। विभिन्न भावनाओं की स्वल्प-सी मुक्त अभिव्यक्ति उनमें थी।

और अब ?"

अब आदमी नही हूँ। बल हूँ। शादी के बाद इन्सान एसा ही हो जाता है केदार बाबू!

"पागल हो गये हो । मरी तरह बीमार पडते तो ऐसा नही कहते ।"

"घर की बजाय अस्पताल और धर्मशाला में मरना ज्यादा अच्छा है। घर से तो गली भी अच्छी। किरण की आन्तरिक वेदना शन शनै स्फुरित हो रही थी।

"फिर मुझे भी किसी अच्छी जगह ही ले चलो न।" साथ ही केदार बाबू न थोडा सा हस भी दिया।

"तुम मतलब नही समझे। और फिर तुम्हारा यह स्थान तो घर भी नही—धर्मशाला है। घर में एक औरत का होना आवश्यक होता है केदार बाबू ! साथ ही उसके होठों मे भी एक क्षीण हसी बाहर निकल पडी।"

"घर-गृहस्थी तुम्हे पसन्द नही ?"

'ना'

'फिर श्रीमती छाया को क्या फसाया ?"

'वह फसी क्यों ?" किरण को इस मौके पर एक कृत्रिम हसी का आसरा लेना पडा।

"यही तुम्हारी जिम्मेवारी है ?' क्या ?'

'मैं स्पष्ट वक्ता हू भाई। अपने से कुछ छिपाया नही जाता। आदमी, सच पूछो तो अकेला ही अच्छा रहता है। शादी वादी सब झगडा है।"

"तुम ऐसा क्या कहते हो ? श्रीमती छाया तो एक बहुत ही सुसभ्य महिला हैं।"

"मैं छाया की बात नही करता। मैं सिद्धान्त की बात करता हू। छाया तो मुझे मिल गई। दुनिया म बाकी सब को तो छाया नही

मिलती।' पुन किरण ने प्रयास किया कि सलाप का सबध उसकी गृहस्थी से न जुडे। प्रश्न हुआ।

'तुम्हें क्या मालूम ?

'मैं दुनिया मे नही रहता ?'

'इससे क्या ?

'फिर किससे होता है ?   मैं बहुत खराब आदमी हू भाई, और यह इसलिए कि मुह पर सच सच सुना देता हू।

केदार बाबू की बीमारी के इस अवसर पर हो सकता है कि स्वय किरण को ही उसकी यह बातचीत कुछ असगत सी जान पडी मगर वह विवश था। उसकी अतर्वेदना बार बार दमन किए जाने पर भी अपनी प्राकृतिक सतह पर उठ आती थी जिससे उसका हृदय कुछ हल्का हो जाता था। केदार बाबू को इस मानसिक सघर्ष की अपरिचिति नही थी। वह जानता था कि प्रकृति की यह सनातन प्रेरणा अनजान ही आ स्फुटित होती है जिससे पच तत्व का पोषित पुतला किसी घातक विस्फोट की ओर पड कर भी बिखरे नही। वह जानता था कि ससार म ऐसे स्त्री पुरुष अनेक हैं जो भय बीरता और मुफलिसी के समय रईसो सा प्रदर्शन करते देखे जाते हैं। मानव म अपनी आन्तरिक उद्विग्नता—कमजोरी को पचा सकने की ताकत है ही नही। किसी न किसी रूप म उसे इसे बाहर करना ही पडता है। अचेतन अवस्था म बाहर हुई अपनी स्थिति की चेतना जब उसे होती है तो समाज के भय की सतर्कता का शिकार बन जाता है। ऐसी परिस्थिति मे उससे अपनी विरुद्ध परिस्थिति की बात ही निकलती है। मनोविज्ञान की इस मानसिक क्रिया मे मनुष्य प्रत्यक्ष म आख मिचौनी करने लगता है और पकडा जाता है यही हाल इस समय किरण का था और केदार उसे समझ रहा था। आतरिक उद्वेग अधिक था इसलिए किसी रूप म वह तो सहारा लेकर निकल

गया। फिर आई चेतना और साथ ही सामाजिक संस्कारों की कमजोरी। प्रतिवाद इस सामाजिक प्राणी के लिए आवश्यक हो गया और इसीलिए विरोधाभास की शरण उसे लेनी पड़ी। सिद्धांत के बहाने अथवा और कुछ ही सही, उस अपनी आंतरिक उद्विग्नता को रास्ता देना ही पड़ा। किरण ने अनुभव किया कि केदार उसकी मनःस्थिति की वास्तविकता तक पहुंच गया है। उसकी अर्थभरी चुप्पी ने उसे उसके अपने प्रति विचारों का आभास दे दिया था। किरण पर शनैः शनैः इसकी प्रतिक्रिया होने लगी।

आने को तो किरण यहां आ गया था, मगर अधिक देर अब उससे यहां बैठते न बना। आंतरिक अशांति होते हुए कोई भी मनुष्य किसी भी जगह निश्चिन्त होकर नहीं बैठ सकता। केदार बाबू ने देखा कि किरण से कुर्सी पर जम कर बैठते नहीं बन रहा है। वह कभी इधर और कभी उधर बिना किसी मतलब के उठकर बैठता है और बैठ कर फिर उठ जाता है। इस उठ बैठ के सिलसिले में अनेक बार अनायास ही उसके पांव द्वार की ओर गति प्राप्त करते देखे गए। दो तीन बार तो वह द्वार पर पहुंच-पहुंच कर ही वापस लौट आया। आंतरिक उद्विग्नता उसे बैठने नहीं देती थी। केदार की अवस्था भी जाने देने में बाधक थी। जब तक कोई दूसरा आ न जावे उसके पहले चला जाना भी तो ऐसे अवसरों पर असामाजिक-सा लगता है। केदार ने किरण की अन्यमनस्कता को लक्ष्य कर कहा— तो फिर छाया देवी को बुला लाओ न।'

"आपको अकेला छोड़ जाऊं?'

कोई हर्ज नहीं, यहां रामू आता ही होगा।

करीब एक घंटे बाद श्रीमती किरण आ पहुंची। केदार बाबू को उसकी आहट ने जगा दिया। हाथ जोड़ कर बोला— क्षमा कीजिएगा। कुछ वहम सा होने लगा था इसीलिए कष्ट दिया।

कष्ट कुछ नहीं आप आराम कीजिए।'

'मगर आप उदास सी कैसे दिखती हैं ?'

छाया ने एक कृत्रिम मुस्कराहट का सहारा लेते हुए कहा— आप बीमार हैं इसलिए ऐसा दिखता है। उसने केदार के शरीर का स्पर्श किया। नाड़ी भी देखी। फिर बोली—

इस समय तो ज्वर नहीं मालूम होता।

अभी कुछ ठीक है। घंटे भर पहले बहुत बेचनी थी। इसीलिए किरण बाबू के कहने से मैंने आपको कष्ट दिया। छाया के चेहरे पर एक तिरस्कार भरी छाया आई और चली गई। केदार ने इसे देखा या नहीं, उसने ध्यान नहीं दिया। वह चुप रही। कुछ ठहर कर केवल इतना कहा आपको ऐसे मौके पर इतना सकोच नहीं करना चाहिए।'

मेरी हालत की सूचना तो आपको मिल ही गई होगी ?'

जी।

"यही सोच कर लिख भेजा था। आपको बार बार कष्ट न करना पड़े। जवाब म छाया ने थोड़ा सा हस भर दिया।

तो फिर कुछ दीजिएगा ?

जी। उत्तर के साथ ही छाया उठ खड़ी हुई। रामू को एक कांच का गिलास लाने को कहा। सुराही से आवश्यकतानुसार जल लेकर उसने अपने साथ लाए हुए एक पाऊडर को घोला और केदार को दवा पिला दी। कुछ और आवश्यक आदेश भी उसने अन्य औषधियों के सम्बन्ध में दे दिए।

केदार बाबू पलंग पर बठे थे। छाया कुर्सी पर आखें नीचे की ओर किए बठी थी। उसका पांव पलंग पर बिछी चादर के लटकते हुए

एक छोर को हिला रहा था। मालूम होता था कि वह किसी विचार में मग्न है। उसे इस तरह बैठे कुछ क्षण गुजर गए। एकाएक कुछ निश्चय करके, वह बोली—'आपने उनके लिए क्या किया?'

"किरण बाबू के लिए?'

"जी।"

'अभी सोच रहा हूं।'

"बेकारी में मनुष्य का सिर खराब हो जाता है केदार बाबू। वह फिर किसी लायक नहीं रहता। आप उनके लिए कोई ट्यूशन ही ठीक कर दें, जिससे कम से कम काम में तो लगे रहें।' इस समय छाया के चेहरे पर दीनता के भाव थे और आंखों में दया की याचना।

'जरूर कोशिश करूंगा, छायादेवी।'

'जल्दी कीजिए, केदार बाबू। मैं आपसे कई बार कह चुकी हूं। याद है न?' साथ ही एक मन्द मुस्कराहट में उनकी दंत पंक्ति खुल पड़ी। 'खूब अच्छी तरह।" उत्तर के साथ ही केदार भी कुछ मुस्करा उठा।

इस वार्ता के सिलसिले में छाया की यह मुस्कराहट केदार को साधारणतया असंगत सी मालूम होनी कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, परन्तु केदार को ऐसे अनेकों व्यवहार-कुशल लोगों का परिचय प्राप्त था, जिससे वे इसे उसके स्वभाव के एक अंग के अलावा और कुछ नहीं समझे थे।

दोनों के होठों पर अभी मुस्कराहट के अवशेष थे कि कमरे के द्वार पर से किसी ने पुकारा—'केदार बाबू!'

छाया और केदार दोनों की आंखें द्वार पर जा लगीं। उन्होंने देखा कि दो पुरुष वहां खड़े हैं। उन्हें देखकर छाया ने स्त्रियोचित संकोच

'कष्ट कुछ नहीं आप आराम कीजिए।'

'मगर आप उदास सी क्यों दिखती हैं ?'

छाया ने एक कृत्रिम मुस्कराहट का सहारा लेते हुए कहा—'आप बीमार हैं इसलिए ऐसा दिखता है।' उसने केदार के शरीर का स्पर्श किया। नाड़ी भी देखी। फिर बोली—

इस समय तो ज्वर नहीं मालूम होता।'

अभी कुछ ठीक है। घण्टे भर पहले बहुत बेचनी थी। इसीलिए किरण बाबू के कहने से मैंने आपको कष्ट दिया। छाया के चेहरे पर एक तिरस्कार भरी छाया आई और चली गई। केदार ने इसे देखा या नहीं, उसने ध्यान नहीं दिया। वह चुप रही। कुछ ठहर कर केवल इतना कहा आपको इस मौके पर इतना संकोच नहीं करना चाहिए।'

'मेरी हालत की सूचना तो आपको मिल ही गई होगी ?'

जी।

"यही सोच कर लिख भेजा था। आपको बार बार कष्ट न करना पड़े। जवाब में छाया ने थोड़ा सा हँस भर दिया।

तो फिर कुछ दीजिएगा ?'

जी। उत्तर के साथ ही छाया उठ खड़ी हुई। रामू को एक काच का गिलास लाने को कहा। सुराही से आवश्यकतानुसार जल लेकर उसने अपने साथ लाए हुए एक पाऊडर को घोला और केदार को दवा पिला दी। कुछ और आवश्यक आदेश भी उसने अन्य औषधियों के सम्बन्ध में दे दिए।

केदार बाबू पलंग पर बैठे थे। छाया कुर्सी पर आँखें नीचे की ओर किए बैठी थी। उसका पाँव पलंग पर बिछी चादर के लटकने हुए

एक ओर को हिला रहा था। मालूम होता था कि वह किसी विचार में मग्न है। उसे इस तरह कुछ क्षण गुजर गए। एकाएक कुछ निश्चय करके, वह बोली—"आपने उनके लिए क्या किया?"

"किरण बाबू के लिए?"

"जी।"

"अभी सोच रहा हूं।"

"बेकारी में मनुष्य का सिर खराब हो जाता है केदार बाबू। वह फिर किसी लायक नहीं रहता। आप उनके लिए कोई ट्यूशन ही ठीक कर दें, जिससे कम से कम काम में तो लगे रहें।" इस समय छाया के चेहरे पर दीनता के भाव थे और आंखों में दया की याचना।

"जरूर कोशिश करूंगा, छायादेवी!"

'जल्दी कीजिए, केदार बाबू। मैं आपसे कई बार कह चुकी हूं। याद है न?' साथ ही एक मन्द मुस्कराहट में उसकी दंत पंक्ति खुल पड़ी। "खूब अच्छी तरह।" उत्तर के साथ ही केदार भी कुछ मुस्करा उठा।

इस वार्ता के सिलसिले में छाया की यह मुस्कराहट केदार को साधारणतया असंगत सी मालूम होनी कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, परन्तु केदार को ऐसे अनेकों व्यवहार-कुशल लोगों का परिचय प्राप्त था जिससे वह इसे उनके स्वभाव के एक अंग के अलावा और कुछ नहीं समझे थे।

दोनों के होठों पर अभी मुस्कराहट के अवशेष थे कि कमरे के द्वार पर से किसी ने पुकारा—"केदार बाबू!"

छाया और केदार दोनों की आंखें द्वार पर जा लगीं। उन्होंने देखा कि दो पुरुष वहां खड़े हैं। उन्हें देखकर छाया ने स्त्रियोचित संकोच

देना प्रारम्भ कर दिया। अभी साल भर हुआ मुझे इसके चरित्र पर शक हुआ तो मैंने कुपात्र समझ कर अपनी सहायता बन्द कर दी। भलाई का यह नतीजा है, वकील साहब।"

'सहायता बाद म क्या दी थी ?

'हा

"आपकी चिट्ठी पत्री तो कोई उसके पास नहीं है ?

शायद नहीं है।

'शायद का सवाल नहीं है। है या नहीं ?'

केदार बाबू अपने ही आदमी हैं। इनसे छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं।

सेठ साहब असमंजस म पड गये। कुछ सोचकर बोले—'हो भी सकती हैं।'

'कितनी ?'

'बस पांच सात।'

तब जरूर होंगी। कुछ याद है क्या लिखा था ?

वह सब तो याद नहीं।'

'फिर भी ?

कोई खास बात नहीं लिखी थी।'

जसे ।

कुछ भी याद नहीं है वकील साहेब।'

मैं आऊगा— तुम तयार रहना—वहां साथ चलेंगे—'यह भेज रहा हू — और कुछ मगा लेना — ऐसे ही समाचार होंगे, क्यो ?' —केदार बाबू ने हसते हुए पूछा। वकील महोदय की यह हसी अपने आसामी के

कुछ और निकट सम्पर्क मे आने की चेष्टा मात्र थी ।

'पाच वर्ष पहले की बात याद कैसे रह सकती है केदार बाबू ? और मान लीजिए यही सब लिखा हो तो उसका असर क्या है ? —सेठ साहब की चुप्पी देख उनके साथी ने कहा ।

' असर वसर अभी कुछ नही मालूम होता, अदालत म दिखाई देता है । मेरा मतलब अभी वास्तविकता जानने से है ।

'तो तुम क्या कहते हो ?"—सेठजी के साथी ने पूछा ।

साच कर कहूगा ।

' मामला पचीदा है क्या ?'

''जरूर, यदि पत्र उसके पास हैं ।'

' फिर फसला कर लें ?"

' बहतर है यदि हो जाय ।'

'यदि न हो सके ?

"कम अधिक रुपयों की हो तो बात है । कोशिश करने से पार पड जायगा ।'

कुछ क्षण के लिये कमरे म शान्ति छा गई । केदार ने रामू को आवाज देकर बुलाया और आज्ञा दी कि वह तीन कप चाय तैयार कर लाए, परन्तु आगन्तुकों न उसे रोक दिया । कष्ट क लिए क्षमा चाहते हुए सेठजी व उनके साथी उठ खडे हुए और कमरे के बाहर चल दिए ।

इसके बाद सध्या के सात बजे के करीब केदार बाबू श्रीमती छाया के पास अस्पताल गये । इस समय तक वे घूमने फिरने लायक हो चुके थे । छाया की मुख मुद्रा इस समय भी गभीर ही थी । यद्यपि स्वभाव के नाते मुस्कराहट बातचीत के बीच उसके होठों पर आ स्फुटित होती थी, फिर भी

उसम अपना प्राकृतिक सौदय व माधुय नही होता था। छाया की बातचीत म भी गभीर प्रसग आ उपस्थित हुए। बीमारी स छुट्टी पा वह बोली— 'केदार बाबू ! इसान सुखभोग के लिए शादी करता है पर यु यह उसकी भूल है।

कैसे ?"

शादी क बाद सुख मिलता नही, इसलिए ।'

आपने यह भूल क्यो की ?'

भूल बाद मे मालूम होती है।

अब ?"

उपाय नही है। कुछ क्षण रुक कर वह फिर बोल उठी— है ? बोलिए।'

'है क्या नही ? दुनिया म सब कुछ है।'

इस समय केदार ने अनुभव किया कि श्रीमती छाया की विचार धारा एक भयकर निश्चय की ओर धीरे धीरे बढ़ रही है। छाया की कच्ची गृहस्थी स सुपरिचित होन के कारण वह इसकी इस विचारधारा मे असगत बात नही देखता था। किरण परिवार का एक सुहृद होन के नाते उसका कतव्य था कि वह इस कच्ची गहस्थी को कुछ सहारा दे, इसे बिखरने न दे। यही सोच उसन छाया के विचारो से अपना अलग मत प्रगट किया। छाया ने यद्यपि आज तक अपनी सच्ची कहानी कभी भी केदार के आगे नही कही थी फिर भी यह नही कहा जा सकता कि उसने अपनी गृहस्थी का भेद सब रूप से ही गुप्त रखा हो। जान या अनजान मे इतना तो उसने बता ही दिया था कि पत्नी रूप म वह अपने पति से दुखी नहीं है। कहानी का क्या' अग प्रगट हो गया था। कब और कसे प्रगट होने सिफ शेष बचे थ। केदार बाबू के आखिरी उत्तर—' है क्या नही ? दुनिया मे सब

कुछ है —न ता इन म प्रवटीकारण की भी भूमिका बना दी थी।

कदार बाबू नवागतुक बीमारा की भीड देख उठ खडे हुए। छाया न सम्मान मे उठकर हाथ जाड दिय।

जिस समय छाया अस्पताल स अपन घर पहुची उस समय तक किरण घर नहीं आया था। उसने देखा कि आज का खाना भी यथावत् बगर खाय ही पडा है।

कल रात से इस परिवार की यही परिस्थिति चली आ रही थी। घर क मालिक मालकिन एक दूसरे के प्रति रोष से भरे मौन धारण किये, अपन नित्य का कर्तव्य पालन करते हुए अपरिचित की तरह घर की इस चहारदीवारी म वास कर रहे थे। इन परिचित अपरिचितो म से हरेक को शायद मालूम था कि उनका पारस्परिक रोष किस बात को लकर है। फिर भी न जाने उस दुख के मूल को इन लोगा न क्यो पनपने दिया—क्या न उखाड कर समूल नष्ट कर दिया!

छाया और किरण दानों जानत थे कि दुनिया म जो भी मनुष्य जन्म लेता है वह अपनी बढ़ती हुई उम्र के साथ साथ अपन अन्दर एक व्यक्तित्व का विकास करता हुआ बडा होता है। यह व्यक्तित्व उसकी निज की सम्पत्ति होती है जिसका अस्तित्व उसके भावों विचारो व जीवन के मीठ कडवे अनुभवो म होता है। व्यक्तित्व के इस विकास के साथ साथ व्यक्ति म अपन अधिकारो की वृद्धि होनी चलती है जिनम अपना व्यक्तित्व रखते वह अलग होना नही चाहता। समय पाकर य अधिकार उसके व्यक्तित्व का एक अग बन जात है और उन्हें छोडत उस अपने व्यक्तित्व के खोन का सा दुख होता है।

वे यह भी जानते थे कि परिणय दो आत्माओ का एक ऐसा मिलन है, जिसमें व्यक्ति क अलग अधिकारा का कोई महत्व नहीं। जिन व्यक्तियों म अपना व्यक्तित्व खो देन की अथवा उस दूसरे के अनुरूप बना

लेने की शक्ति नही वे आत्माओं का एकत्व लाभ नही कर सकते और इसी कारण परिणय अवस्था म उन्ह सुख नही मिलता।

समाज के शिक्षित स्त्री पुरुषो म व्यक्तित्व विशेषता कुछ अधिक अशो म विकसित होती है और इसलिय उनका अधिकार क्षत्र भी तदनुसार कुछ अधिक विस्तत व सुदृढ होना पाया जाता है। पग पग पर बात-बात म व्यक्तित्व का यह सघर्ष उनके जीवन मे दृष्टिगोचर होता है, कारण वे परिणय की एकमात्र शत 'व्यक्तित्व त्याग के मूल मन्त्र को नही अपना सकते। किरण और छाया इस सैद्धांतिक दृष्टिकोण से भी अपरिचित नहीं थे। परन्तु सैद्धान्तिक परिचिति मात्र उनके लिय अपने जीवन म समस्याओं का समाधान न हो सकी। विवश से दोनो एक अदृष्ट सकेत पर जीवन बिता रहे थे।

छाया और किरण के जीवन म भी शायद इसी तरह का कोई व्यक्तित्व विरोध इस समय आ उपस्थित हुआ था जिसके कारण दोनो एक दूसरे के रोष भाजन बन रहे थ। इसी रोष के फलस्वरूप दोनो ने अभी तक एक दाना भी मुह मे नही रखा था। दोनो चाहते थे कि यह गह कलह न रहे परन्तु दोनो म इतनी क्षमता नही थी कि उसके कारणो को रोक सकें।

किरण के आने के इतजार म छाया घर आकर सो रही। उसके आने पर भी परिस्थिति मे कोई सुधार होगा ऐसी आशा उसे नही थी। फिर भी वह चाहती थी कि अच्छा है यदि उसकी प्रतीक्षा स ही कोई आशा पूर्ण पहलू निकल आय।

इस समय रात के आठ बजे थे। प्रतीक्षा करते करते नौ बजे और फिर इसी तरह दस बज गये। फिर भी किरण न आया। उस दुख था। वह जानती थी कि किरण भी दुखी है और प्रतीक्षा से कोई मतलब नही था फिर भी वह प्रतीक्षा करती रही। वह किरण को दिखाना चाहती थी

कि वह दुखी है और उसके कारण से दुखी है। यही इस प्रतीक्षा का मन्तव्य था।

दुख का यह मूक प्रदर्शन प्रायः अपनी गृहस्थी में किरण को देखने को मिलता था। अपने दुख का परिचय देकर अपने दूसरे साथी को दुखी और अशान्त करना ही इस प्रदर्शन का लक्ष्य होता था यह भी किरण जानता था। प्रायः इस तरह की आत्मिक वेदना से किरण और छाया के बीच अनेक बार प्रणय की परिस्थिति भी उत्पन्न हो जाती थी। मद्भूमि के क्रन्दनात्मक इस प्रदर्शन ने अनेकों बार उनके पारस्परिक संघर्ष को समाप्त कर नवजीवन की सुखमय प्रेरणा उन्हें दी थी। छाया के लिये जीवन की इस मंजिल पर कलह समाप्ति का यह मूक प्रदर्शन एक साधन बन गया था और इसीलिये उसके आश्रित हो यह प्रतीक्षा करती रही।

खैर। रात के ग्यारह बजते-बजते किरण घर आया। पहुँचा उस समय द्वार बन्द थे। आवाज दी—'आशा।"

आशा ने आकर द्वार खोल दिये। किरण अन्दर प्रवेश कर ही रहा था कि किसी ने आवाज दी—"किरण बाबू।'

'कौन है?'

"राजाराम।"

'कौन राजाराम?"

अब तक राजाराम पास आ गया था। झट कर बोला—'मैं राजाराम सेठ का आदमी।'

"क्या है?'

'पैसे लाइये।"

'बिल कहां है?"

'लीजिये।"

राजाराम ने बिल किरण को पकड़ा दिया। किरण ने खड़े होकर कुछ क्षण सब हिसाब पढा और फिर 'ठीक है' कहकर उसे अपनी जेब में रख लिया। इसके बाद वह बगैर कोई उत्तर दिये ही द्वार में प्रवेश करने लगा था कि राजाराम ने उसके कोट का अंचल पकड़कर उसे रोक लिया। बोला— पीछे अन्दर जाना बाबूजी! पहले पैसे रखिए। मैं पांच घण्टे से आपके इंतजार में बैठा हूँ।

राजाराम के ये शब्द तो उसके मुँह में ही रहे कि किरण गरज उठा— बदतमीज! और दिया उसके हाथ को जोर का झटका। अंचल तो इस पर छूट गया मगर साथ ही उसने सुना—'मुँह पर लगाम रखो बाबूजी वर्ना डण्डे से खोपड़ी लाल कर दूंगा'—राजाराम की डाँट भी बहुत बुलन्द थी। अब तक उसने डण्डा भी सम्भाल लिया था।

सेठ का बच्चा! यह वक्त है भले आदमियों के घर आने का?'

इस भले आदमी की शक्ल देखिये। सात महीने हो गये जूतियाँ घिसवाते और अभी भले आदमी ही रहे। 'धूप में आना' 'दो घण्टे बाद आना' 'सुबह आना' 'शाम आना' 'बिल लाओ' कहते कहते छः महीने तो निकाल दिये और अब भी नालायक पाजी बदतमीज सेठ का बच्चा। सेठ मुफ्त की तनख्वाह नहीं देता है बाबू। पल भर में सब शान मिट्टी में मिला दूंगा। समझ के बात करो। नहीं समझे तो यह डण्डा अभी सब समझा देगा।

राजाराम के आगे किरण की तजबीज ने काम न दिया। किरण ने देखा कि इसका तो उल्टा ही असर हो गया। कलकत्ते में आवागमन की दृष्टि से रात और दिन में विशेष अन्तर नहीं होता। सड़क पर का घर था। राह चलते भी आ इकट्ठे हुये। आशा द्वार के पास खड़ी ही थी। छाया भी आ गई। सब देखने सुनने लगे किसी ने हस्तक्षेप नहीं किया।

अपनी हद म नहीं रहोगे राजाराम ?'

' "हद तुमने समाप्त कर दी आज। अब तुम्हारी और मेरी हद पमा है। उस यहा रख दो और बस सलाम इस घर को।

छाया इतनी मेर से सब सुन रही थी। उसने देखा कि घर के बाहर रास्ते चलता का जमघट सा लग गया है। किरण की आवाज की तजी भी अब गायब हो चली थी। वह राजाराम के उत्तर पर सिर्फ अच्छा कह कर चुप हो गया था। मगर इतनी परिचित अपरिचित आखों के आग उसम चुप रहते भी न बना। राजाराम को तो वह कुछ न कह सका परन्तु रास्त चलतों का, जो खड हो गय थे लक्ष्य करके बोला— यह क्या तमाश है ? अपना रास्ता लो न।

किरण का डाट सुनकर दशक एक बार कुछ कदम हट गये मगर फिर इस दिलचस्प नाटक का अन्त देखन खडे हो गय। दुनिया को न जाने बातचीत को घटनापूर्ण दृश्यों में परिवर्तित देखने की इस कदर चाह क्या है ? इसका अनुभव आज छाया को हुआ। खैर और सब तो देखते रहे, परन्तु छाया से और अधिक देखने न बना। आशा की ओट लेकर बोली— पूछो कितन पैसे दने हैं ?

सुन कर राजाराम बोला, आठ रुपय आठ आने।

छाया एक बार भीतर गई और रुपये लाकर आशा के हाथ म दे दिय और कहा— वह दो य ता ल जाय। कायदा समझ कर व्यवहार करे।

आशा न वैसा ही कह दिया और रुपये राजाराम के हाथ म दे दिय।

किरण छाया द्वारा प्रस्तुत परिस्थिति की बेशर्मी से बचने के लिय घटनास्थल से छाया के अन्दर जाते ही हट गया था। परन्तु उसके कान खुरे थ। उसने छाया को आशा से और आशा को राजाराम से यह

कहन सुन लिया कि ये तो ले जाय आयन्दा समझ कर व्यवहार करें—सुन कर किरण कट गया । इच्छा हुई कि राजाराम को रुपये लेन से मना कर दे परन्तु हिम्मत न हुई । इतने आदमियों की टिप्पणी जो घटनास्थल पर मौजूद थे क्या होगी उसका अनुमान भी वह अच्छी तरह लगा सकता था। बात उसके हाथ से बाहर हो चुकी थी। सिर्फ पछतावा शेष रहा था। उसी म शोक मग्न हो वह पड रहा।

द्वार ब द करा के छाया अ दर आई। इस समय उसका मुह रोष म फूल रहा था। आकर एक ओर कोने म रखी कुर्सी पर वह बैठ गई। इस समय भी वह बोलने मे पहल करना न चाहती थी। शायद इसलिये कि इस समय उसका पक्ष प्रस्तुत घटना से कुछ अधिक सुदृढ हो चला था। उसने अपने पति को अपमान से जो बचाया था! दोनो एक ही कमरे म एक दूसरे के प्रति खिचे बैठे थे। दोनो के हृदय जल रहे थे। कमरे मे घोर शान्ति छा गई। कल शाम से किसी के रोटी पानी का पता न था। न जाने क्या क्या भाव उनके हृदयों म उथल पुथल मचा रहे थे।

किरण इस परिस्थिति म अपनी मौन मुद्रा अधिक देर तक न निभा सका। बोला औरत के पाव ही सिर्फ पूजा के लायक होते हैं मगर उसका सिर साथ हो उसका दाहिना पाव ठोकर के अर्थ म झूल चला।

छाया ने किरण की यह युक्ति सुनी मगर वह शान्त रही। न जाने क्यो ? उसने किरण की इस बात पर नजर जरूर उठाई परन्तु फिर सिर झुका लिया। ऐसा करते समय उसके होठ एक बार खुले भी मगर फिर वापिस ब द हो गये। इस दृष्टि प्रपात का क्या अर्थ था यह तो वही जाने मगर इतना अनुमान तो लगाया जा सकता था कि उसम रोषमयी घृणा का समावेश प्रचुर मात्रा म था। किरण कुछ क्षण लेटा रहा फिर एकाएक चोट खाये हुये क्रुद्ध मानव की तरह उठ बैठा। इस समय उसकी आखें आग बरसा

रही थी। क्षण भर ठहरकर बोल उठा 'तुम समझती हो तुमने अपने पति का अपमान से बचाया है ?"

'मैं कुछ नहीं समझती।'

'फिर मेरे पैसे क्यों चुकाए ?'

"इसलिए कि अपने द्वार पर मैं प्रदर्शन नहीं चाहती।'

'इतनी देर क्यों होने दिया ?'

'पुरुष का पौरुष देख रही थी।

छाया के कठोर शब्द एक पत्नी के योग्य न थे पर वह विवश थी। आवेश में जैसा मुंह में आया उसने कह डाला। इस अनुचित व्यवहार का उचित उत्तर उसके पास न होगा—यह अनुमान करना तो बिल्कुल ही गलत होगा। किरण जानता था कि जो कुछ भी उसने कहा समझ बूझ कर कहा और किरण को अपनी दशा का भान कराने के लिये कहा। यह बात दूसरी है कि किसी की हालत पर उसका ध्यान आकर्षित करने व उसके व्यवहार की असफलता का उसे भान कराने के लिये इससे बेहतर तरीके भी हो सकते हैं और होते हैं परन्तु छाया के लिये प्रस्तुत परिस्थितियों में वे सब तरीके समाप्त हो गये थे। बात व्यक्तित्व की हार जीत पर आ तुली थी। वह जानती थी कि गृहस्थी में व्यक्तित्व की यह प्रतिमा स्पर्धा असफल गृहस्थ जीवन का एक चिह्न है। यह मूल दोष अनेक तरह की गलत फहमियां उत्पन्न करता रहता है, और समय के साथ साथ एक दूसरे को समझना तो दूर रहा, समझने की कोशिश तक में भी अग्रसर नहीं होने देता। व्यक्तित्व-संघर्ष से पैदा हुई यह खाई समय के साथ साथ गहरी और चौड़ी होती जाती है और एक समय ऐसा भी आ सकता है जब गृहस्थ के ये व्यक्तित्व उपासक एक दूसरे से इतने दूर हो जाते हैं, कि उनका मिलना तो दूर रहा, दर्शन तक की आशा भी दुर्लभ जान पड़ती है। छाया का अपने

जीवन मे इस घटनाक्रम की अनुभूति हो रही थी परन्तु फिर भी स्वभाव से वह बेबस थी ।

छाया का उत्तर सुन किरण मर्माहत हो चुप हो रहा । मगर उसके भाव उफान खा रहे थे । उन्हे रोकना आवेश की इस स्थिति म असभव था । दो एक क्षण चुप्पी रख कर फिर बोल उठा—'औरत की जात ही पैसा कमा सकने पर इतनी इतरा जाती है !

'पुरुष बगर कमाए ही जो इतना इतराता फिरता है ।'

"छाया ! राक्षसी ! पत्नी की सीमा तू कभी की पार कर चुकी । अब साथ ही कडक कर वह उठ बठा और अपने भीषण आवेश म छाया के ऊपर पहुँच गया ।

मैंने कोई सीमा पार नही की । गृहस्थ म पति पत्नी पति पत्नी होकर ही रह सकते हैं शत्रु बन कर नहीं—' उसकी वाणी व भावो मे गम्भीरता थी ।

, उस परिस्थिति के लिए कौन जिम्मेवार है ?'

'मैं ? और तुम बिल्कुल नही ?

'नही किरण न जवाब दिया ।

"'जो व्यक्ति मेहनत करके पैसा कमाए उसका उस पर कोई अधिकार नहीं होता ?'

'पति पत्नी के बीच पैसे के सवाल को मैं ससार म सबसे हीन बात समझता हू ।

और उसी बात के लिए घर को श्मशान बना रखा है ?"

जरूर । तुम्हारी जसी औरतें जिस घर म होंगी वह श्मशान से भी बदतर हुए बिना न रहेगा ।'

छाया आक्षेप सुन एक क्षण के लिए चुप रही। भावो का यह निकास किसी हद तक दोनो के लिए अच्छा था। भरा हुआ रोष बाहर निकल कर दोनो के भारी हृदयो को हल्का कर रहा था। परन्तु और अच्छा होना, यदि व्यक्तित्व त्याग का आदर्श सामने रख कर य व्यक्ति अपनी गलत फहमिया मिटान की कोशिश करत। एसा दानो मे स एक भी न कर सका। क्षण भर की चुप्पी के बाद ही छाया बाल उठी— इतना कमा कर मैंने अपन लिए क्या रखा ?"

'तुमन कुछ भी नही रखा अथवा सब कुछ रख लिया—पति पत्नी के बीच पैसे की बात को मैं बिल्कुल नहीं करना चाहता।'

'पसे की बात करना नही चाहते, परन्तु पैसा खच कर डालना चाहत हो।'

'पसा खच करन के लिए ही होता है।'

'किन्तु बरबाद करने के लिए नही।"

'तुम समझती हो कि तुम्हारा पसा मैं बरबाद करता हू।"

'मुझ से अधिक इस बात को तुम समझ सकते हो।

'मैं तुम्हारा हू, परन्तु मेरी विधवा बहिन बूढे चाचा, उनके छोट छाट बच्च तुम्हारे कोई नही हैं—यही तुम मानती हो न ?'

'वे ही मरे सब कुछ हैं। परन्तु मेरी मा मेरी विधवा बहिन के बच्च मेरे कोई नहीं हैं ?'

'किसन कहा नही है ?"

किसने कहा है ? यदि मेरे वे कुछ भी होते तो उनका खयाल भी रखा जाता।'

"उन्हें घर उठा कर दे दो।"

'घर नही दूगी। उनका हिस्सा उन्हे जरूर दूगी।

"हिस्सा करने का हक तुम्हे हासिल है इसलिए।

मेरी मा ने मुझे क्या क्या तकलीफें सह कर लिखाया पढाया है वही जानती है। अब उनके आराम के दिन हैं। मेरा कर्त्तव्य है, कि मैं उनकी सेवा करू उन्हे आराम दू।

पति पत्नी के बीच मा बहिन भाई किसी का हक नही आ सकता।

पत्नी के साथ वह व्यवहार तुमने नही रखा।

मैंने नही रखा?

'तुमने नही रखा।

किरण एक क्षण चुप था कि छाया बोल उठी— तुमने अपना विश्वास अपने हाथो खोया है। पहले भी तुमने मुझे धोखा दिया। अफसोस है अब भी तुम उसी राह को पकड़े हुए हो।

'छाया! मुह बन्द नही करोगी?

मुह बन्द वह करे जो गलती पर हो।

मैं सारी गलतिया अभी ठीक कर दूगा।

'अपने जीवन मे तुमने और सीखा ही क्या है?

चुप नही रहोगी?

सच कहू तो आग लगता है। पर अब मैं उस आग की आच से दूर भागना नही चाहती। तुमने मुझे क्यो झूठ कहा कि तुम्हे काम मिल गया है तुम किसी से उधार नही लाते तुमसे कोई कुछ नही मांगता? मैंने अपनी कमाई की एक कौडी को भी अलग रखा जो तुम समझ बैठे कि मुझे माया से मोह है—पैसे से प्यार है? जो कुछ भी मैंने कमाया लाकर

तुम्हारे हाथ मे सौंपा। एक दिन भी उसका हिसाब न पूछा कि तुम उन रुपयों का क्या करते हो। फिर भी तुमने अपनी आदत नही छोडी। आए दिन घर पर प्रदर्शन होते हैं। शहर-समाज के भले लोग उस प्रदर्शन को देखते हैं। मैं न भी कहूं पर उनके मुंह को कौन रोक सकता है।

इतना कहते कहते छाया की आंखें आंसुओं से छलक आईं और उसका कण्ठ कुण्ठित हो चला। आंखें नीची कर अपनी साडी के अंचल से वह उन्हें पोंछने लगी। किरण खडा खडा सुन रहा था। उसने कोशिश ही नही की कि छाया को उसके वक्तव्य के बीच मे रोके। जहां तक छाया के लिए बोलना सभव हो सका वह अपने आवेश मे बोलती गई। उसका रुकना वही हुआ जहां उससे बोलते न बना। किरण छाया पर अपनी आंखें आरोपित किए मूर्ति बना खडा था। जब वह बन्द हुई उसके मुंह से एक आवाज निकली—'ऊंह!' इसके आगे उसके मुंह से शब्द नही निकले। और उत्तर शायद उसके पास था भी नही।

छाया सभलकर फिर बोली—'आज ही तुमने अपनी बहुत सी चीजो को बेच फूंका मानो घर म पैसे नही थे। तुम समझते हो तुमने उन्हे बेच कर वीरता दिखाई—किसी का कुछ नही बिगाडा। मेरा जी जानता है कि तुमने यह करके मुझे कितनी चोट पहुंचाई है मानो मेरी कमाई पर तुम्हारा कोई अधिकार नही—तुम्हारी इज्जत से मैं पैसो को जैसे अधिक कीमती समझती हूं।'

'जरूर।

यही समझते हो तो तुम्हारा इस घर मे रहना बेकार है। एक बार लोगों को ।

शेष शब्द छाया के मुंह मे ही रहे कारण अब तक किरण का हाथ छाया के मुंह पर आ पडा था। हाथ पड़ते ही छाया चीख खा कर

कुर्सी से नाच जा गिरी। किरण ने एक लात और फेंकी। साथ ही दूसरी चीख भी और तजी से निकली।

किरण को अपने क्रोध के आवेश म छाया का यह चीखना और भी बुरा लगा। कड़क कर बोला—'घर की बच्ची! बुला तरे यारों को। और साथ ही उसने छाया पर लात मुक्कों की झड़ी ही बांध दी।

इधर छाया चिल्लाने लगी उधर आशा डर कर मदद क लिए पुकार मचाने लगी। अपनी विवशता म उसने घर के द्वार खोल दिए। ठंडी रात थी। रास्ते का घर था, सुन कर लोग दौड़ आए। पास-पड़ोसी भी इकट्ठे हो गए। देखा तो एक दृश्य था। कमरे के बाहर आशा आंसू पोंछ रही थी। कमरे के अन्दर छाया जमीन पर पड़ी सिसकियां भर रही थी। किरण कुर्सी पर हाथ रखे क्रोध की मूर्ति बना छाया क ऊपर खड़ा था। इस समय छाया की सिसकियां क सिवाय कमरे मे पूर्ण स्तब्धता थी। किसी की हिम्मत न हुई कि किसी तरह का हस्तक्षेप करे। एक पड़ोसी न सबको यह कह कर घर स बाहर कर दिया कि पति पत्नी का मामला है। हम लोग क्या करेंगे चलो यहां स।

तमाशबीनों क चल जाने के बाद किरण का रहा सहा क्रोध आशा पर उतरा। उसने कमरे स बाहर आकर एक चांटा और एक लात उसे भी रसीद कर दिए। साथ ही बोला— हरामजादी! दरवाजा खोल कर हल्ला मचाती है। बुला उन बचाने वालों को।

आशा अपने हिस्से की मार खाकर चुप रही। किरण अपना गुस्सा निकाल, जिन कपड़ों म था उन्हीं म लेट रहा। कुछ देर बाद छाया आशा के सहारे से उठी। वह भी अपने पहने हुए वस्त्रों म ही एक पलंग पर पड़ रही। उसकी आंखों से अब भी आंसू जारी थे। आशा न बिना बुलाए बोलना उचित न समझा। उसने द्वार बन्द कर लिए और बाहरी बत्ती बुझाकर अपने बिस्तर पर चली गई।

: ३ :

सवेरे उदास फीका चेहरा सजल आँखें लिए छाया जब केदार बाबू के सामने उपस्थित हुई तो उन्होंने भयभीत होकर पूछा— क्या बात है ?'

छाया कई क्षण तक कुछ न कह सकी। उसकी आँखों का अविराम अश्रु प्रवाह ही अपनी कथा कहता रहा। केदार ने बार बार उससे कारण पूछा पर छाया का गला अवरुद्ध ही रहा। यह देख केदार भी कुछ देर के लिए चुप हो गया।

हृदय का आवेग बह जाने पर जब छाया कुछ शान्त हुई तो वह बोली— केदार बाबू हिन्दुओं के कानून में तलाक है भी या नहीं ?'

'बात क्या है ?

"हम और अधिक साथ नहीं रह सकते केदार बाबू ! मैं उनसे छुटकारा चाहती हूं। इतना कह वह फिर रोने लगी। शायद बहुत कुछ कहना था, पर मुंह से वह सब इतना जल्दी निकल नहीं रहा था। इसी लिए उद्विग्नता अपनी जल्दी में आंसू बन कर निकल रही थी। केदार छाया के इस अल्प से वक्तव्य से ही उसके रोष और दुख का कारण समझ गया। फिर भी छाया के मुंह से ही उसके दुख की पृष्ठभूमि सुनने के लिए उसने पूछा—

कुछ बताओ तो, बात क्या है ?"

कुर्सी से नीचे जा गिरी। किरण ने एक लात और फेंकी। साथ ही दूसरी चीख भी और तेजी से निकली।

किरण को अपने क्रोध के आवेश में छाया का यह चीखना और भी बुरा लगा। कड़क कर बोला—'घर की बच्ची! बुला तेरे यारों को।' और साथ ही उसने छाया पर लात मुक्कों की झड़ी ही बांध दी।

इधर छाया चिल्लाने लगी, उधर आशा डर कर मदद के लिए पुकार मचाने लगी। अपनी विवशता में उसने घर के द्वार खोल दिए। ठंडी रात थी। रास्ते का घर था, सुन कर लोग दौड़ आए। पास पड़ोसी भी इकट्ठे हो गए। देखा तो एक दृश्य था। कमरे के बाहर आशा आंसू पोंछ रही थी। कमरे के अन्दर छाया जमीन पर पड़ी सिसकियां भर रही थी। किरण कुर्सी पर हाथ रखे क्रोध की मूर्ति बना छाया के ऊपर खड़ा था। इस समय छाया की सिसकियों के सिवाय कमरे में पूर्ण स्तब्धता थी। किसी की हिम्मत न हुई कि किसी तरह का हस्तक्षेप करे। एक पड़ोसी ने सबको यह कह कर घर से बाहर कर दिया कि 'पति पत्नी का मामला है। हम लोग क्या करेंगे चलो यहां से।'

तमाशबीनों के चले जाने के बाद किरण का रहा सहा क्रोध आशा पर उतरा। उसने कमरे से बाहर आकर एक चांटा और एक लात उसे भी रसीद कर दिए। साथ ही बोला—'हरामजादी! दरवाज़ा खोल कर हल्ला मचाती है। बुला उन बचाने वालों को।'

आशा अपने हिस्से की मार खाकर चुप रही। किरण अपना गुस्सा निकाल जिन कपड़ों में था उन्हीं में लेट रहा। कुछ देर बाद छाया आशा के सहारे से उठी। वह भी अपने पहने हुए वस्त्रों में ही एक पलंग पर पड़ रही। उसकी आंखों से अब भी आंसू जारी थे। आशा ने बिना बुलाए बोलना उचित न समझा। उसने द्वार बन्द कर लिए और बाहरी बत्ती बुझाकर अपने बिस्तर पर चली गई।

: ३ :

सवेरे उदास फीका चेहरा सजल आखें लिए छाया जब केदार बाबू के सामने उपस्थित हुई तो उन्होंने भयभीत होकर पूछा— क्या बात है ?'

छाया कई क्षण तक कुछ न कह सकी। उसकी आखो का अविराम अश्रु प्रवाह ही अपनी कथा कहता रहा। केदार ने बार बार उससे कारण पूछा पर छाया का गला अवरुद्ध ही रहा। यह देख केदार भी कुछ देर के लिए चुप हो गया।

हृदय का आवेग बह जाने पर जब छाया कुछ शांत हुई तो वह बोली— केदार बाबू हिंदुओ के कानून में तलाक है भी या नही ?'

'बात क्या है ?'

'हम और अधिक साथ नही रह सकते केदार बाबू! मैं उससे छुटकारा चाहती हू। इतना कह वह फिर रोने लगी। शायद बहुत कुछ कहना था पर मुह से वह सब इतना जल्दी निकल नही रहा था। इसी लिए उद्विग्नता अपनी जल्दी मे आसू बन कर निकल रही थी। केदार छाया के इस अल्प से वक्तव्य से ही उसके रोष और दुख का कारण समझ गया। फिर भी छाया के मुह से ही उसके दुख की पृष्ठभूमि सुनने के लिए उसने पूछा—

"कुछ बताओ तो बात क्या है ?"

कुर्सी से नीचे जा गिरी। किरण ने एक लात और फेंकी। साथ ही दूसरी चीख भी और तेजी से निकली।

किरण को अपने क्रोध के आवेग में छाया का यह चीखना और भी बुरा लगा। कड़क कर बोला— घर की बच्ची ! बुला तेरे यारों को। और साथ ही उसने छाया पर लात मुक्कों की झड़ी ही बांध दी।

इधर छाया चिल्लाने लगी उधर आशा डर कर मदद के लिए पुकार मचाने लगी। अपनी विवशता में उसने घर के द्वार खोल दिए। ठंडी रात थी। रास्ते का घर था सुन कर लोग दौड़े आए। पास-पड़ोसी भी इकट्ठे हो गए। देखा तो एक दृश्य था। कमरे के बाहर आशा आंसू पोंछ रही थी। कमरे के अन्दर छाया जमीन पर पड़ी सिसकियां भर रही थी। किरण कुर्सी पर हाथ रखे क्रोध की मूर्ति बना छाया के ऊपर खड़ा था। इस समय छाया की सिसकियों के सिवाय कमरे में पूर्ण स्तब्धता थी। किसी की हिम्मत न हुई कि किसी तरह का हस्तक्षेप करे। एक पड़ोसी ने सबको यह कह कर घर से बाहर कर दिया कि पति पत्नी का मामला है। हम लोग क्या करेंगे चलो यहां से।

तमाशबीनों के चले जाने के बाद किरण का रहा-सहा क्रोध आशा पर उतरा। उसने कमरे से बाहर आकर एक चांटा और एक लात उसे भी रसीद कर दिए। साथ ही बोला— हरामजादी ! दरवाजा खोल कर हल्ला मचाती है। बुला उन बचाने वालों को।'

आशा अपने हिस्से की मार खाकर चुप रही। किरण अपना गुस्सा निकाल, जिन कपड़ों में था उन्हीं में लेट रहा। कुछ देर बाद छाया आशा के सहारे से उठी। वह भी अपने पहने हुए वस्त्रों में ही एक पलंग पर पड़ रही। उसकी आंखों से अब भी आंसू जारी थे। आशा ने बिना बुलाए बोलना उचित न समझा। उसने द्वार बन्द कर लिए और बाहरी बत्ती बुझाकर अपने बिस्तरे पर चली गई।

: २ :

उतरे उदास फीका चेहरा सजल आँखें लिए छाया जब केदार बाबू के सामने उपस्थित हुई तो उन्होंने भयभीत होकर पूछा— क्या बात है ?'

छाया कई क्षण तक कुछ न कह सकी। उसकी आँखों का अविराम अश्रु प्रवाह ही अपनी कथा कहता रहा। केदार ने बार बार उससे कारण पूछा पर छाया का गला अवरुद्ध ही रहा। यह देख केदार भी कुछ देर के लिए चुप हो गया।

हृदय का आवेग बह जाने पर जब छाया कुछ शान्त हुई तो वह बोली— केदार बाबू हिंदुओं के कानून में तलाक है भी या नहीं ?"

'बात क्या है ?'

'हम और अधिक साथ नहीं रह सकते केदार बाबू ! मैं उनसे छुटकारा चाहती हूं। इतना कह वह फिर रोने लगी। शायद बहुत कुछ कहना था पर मुंह से वह सब इतना जल्दी निकल नहीं रहा था। इसी लिये उद्विग्नता अपनी जल्दी में आंसू बन कर निकल रही थी। केदार छाया के इस अन्त में वक्तव्य से ही उसके रोष और दुख का कारण समझ गया। फिर भी छाया के मुंह से ही उसके दुख की पृष्ठभूमि सुनने के लिए उसने पूछा—

'कुछ बताओ तो, बात क्या है ?'

बठी । केदार ने उसे रोक कर बाहर जाने से मजबूर कर दिया । बोला—मेरे पर अविश्वास करती हैं आप ?"

'नही, अविश्वास करती तो यहा आती नही । विश्वास करती हू तभी तो मदद चाहती हू । शायद आपको अपने मित्र के विरुद्ध मुझे सहायता करने म आपत्ति हो ।

नहीं, एसी बात नही है ।"

छाया बोली—'कोई पति क्या अपनी पत्नी के साथ ऐसा दुर्व्यवहार करता है, केदार बाबू ! मेरी हैसियत की कोई भी पत्नी क्या पति का एसा दुर्व्यवहार सहन करती है ? यह एक दिन की घटना नही है केदार बाबू ! प्रतिदिन का यह दुर्व्यवहार तो पशु भी सहन नही कर सकते ।

"यह उनकी नासमझी है ।"

नासमझी नही, नीचता है केदार बाबू ! उन्होंने मुझे धोखा देकर अपने जाल म फसाया था । कहा था एम ए हू पर पढे मट्रिक तक भी नही हैं ।"

सच कहती हो !'

सच ही कहती हू केदार बाबू ! वे कुछ भी पास-वास नही हैं । जहाजियो के साथ रहते रहते कुछ अग्रजी लिखना बोलना सीख लिया । इसी से अनजान उनके चक्कर म आ जाते हैं ।"

'अंग्रेजी बोल तो मजे की लते हैं ?"

इससे क्या ? जहाजी सभी बोल लेते हैं ।

'आपसे जान पहचान कहा हो गई ?"

मेरे शरीर को हालत देखिए। मेरे साथ जो व्यवहार किया है यह पशु के साथ भी क्या होना चाहिए ? अब अधिक सहन की शक्ति मेरे में नहीं है। मैं चाहती हूं कि मेरा उनसे कोई सम्बन्ध न रहे। आज ही सब समाप्त हो जाय।

क्या दुर्व्यवहार तुम्हारे साथ हुआ ?

मेरे शरीर की हालत देखिए। किस निर्दयता से पीटा है। पास पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए। महीने में बीस दिन यही होता है। शहर समाज में मेरी इज्जत है। घर में यह दुर्दशा कब तक सहती रहूंगी ? वह फिर रोने लगी।

"हैं स्त्री पर हाथ उठाने जैसा निन्दित काम किया किशन बाबू ने !"

क्या कहूं ? किससे कहूं ? यदि हम लोगों का सम्बन्ध विच्छेद नहीं हो सकता है तो मैं अपने जीवन का अन्त करके उस समय बनाऊंगी। मुझे एक क्षण भी अब उनके साथ रहना स्वीकार नहीं है। इसीलिए आपके पास आई हूं। मेरी मदद कीजिए।"

'सब कुछ सम्भव है परन्तु इतने महत्व की बात का इतनी जल्दी फैसला नहीं करना चाहिए।

'इस संबंध में मैं सलाह नहीं चाहती केदार बाबू ! सहायता चाहती हूं। मेरा यह निश्चय आज या कल का नहीं है। वर्ष भर के पूरे विचार का है।

'फिर भी ?"

आप हिचकिचाते हैं ! खैर।"

इतना कह आंखों से आंसुओं को पोंछती हुई अपनी कुर्सी से उठ

बठी। केदार ने उसे रोक कर बाहर जाने मे मजबूर कर दिया। बोला—
मेरे पर अविश्वास करती हैं आप ?"

नही अविश्वास करती तो यहा आती नही। विश्वास करती
हू तभी तो मदद चाहती हू। शायद आपको अपने मित्र के विरुद्ध मुझे
सहायता करने म आपत्ति हो।

नही ऐसी बात नही है।"

छाया बोली—' कोई पति क्या अपनी पत्नी के साथ ऐसा दुर्व्य
वहार करता है, केदार बाबू। मेरी हैसियत की कोई भी पत्नी क्या पति
का ऐसा दुर्व्यवहार सहन करती है? यह एक दिन की घटना नही है
केदार बाबू। प्रतिदिन का यह दुर्व्यवहार तो पशु भी सहन नही कर
सकते।

' यह उनकी नासमझी है।'

' नासमझी नही, नीचता है केदार बाबू। उन्होंने मुझे धोखा
देकर अपने जाल मे फसाया था। कहा था एम ए हू पर पढे मैट्रिक तक
भी नही हैं।"

' सच कहती हो।'

' सच ही कहती हू केदार बाबू। वे कुछ भी पास-वास नही हैं।
जहाजियों के साथ रहते रहते कुछ अग्रेजी लिखना बोलना सीख लिया।
इसी से अनजान उनके चक्कर मे आ जाते हैं।"

अग्रेजी बोल तो मजे की लेते हैं ?"

' इससे क्या ? जहाजी सभी बोल लेते हैं।

"आपसे जान पहचान कहा हो गई ?

' मत पूछिये। यह भी एक दुर्भाग्य था। गाना सीखने को कुछ

दिन के लिए रखा था। मैं बातो म आ गई। आवेग म आ उनके साथ जाकर विवाह की रजिस्ट्री करा दी।"

'आपका विवाह फिर ?

'सिविल मरेज है। इसीलिए तो कहते है कि तुम मुझसे छुट कारा नही पा सकती।

नासमझी है।'

मत पूछिये केदार बाबू कि इसकी क्या हैसियत है। इनके खुद के घर म इसकी कोई इज्जत नही करता। बाप न इसे आवारा समझ कर एक अर्सा हुआ अपने घर स निकाल दिया था। वे बहुत भले आदमी हैं। मैं जब विवाह के बाद उनके दशन क लिए उनक मकान पर गई तो मुझे उन्होने बताया कि कितना बुरा शख्स यह है! अपने बुड्ढे मा-बाप पर हाथ उठाते भी इस बेशर्म को शर्म नही आती। इसीलिए वे इसे अपने घर म नही रहने देते। ससार मे कोई ऐसा नही है जिस पर सहायता क लिए यह निर्भर रह सके। उनसे मिलने के बाद ही सवप्रथम मुझे अपनी पसन्द पर दुख हुआ। परन्तु मैंने उस दुख को किसी क आगे प्रकट नही किया। बहुत बार इसने मुझे पूछा भी कि पिताजी न क्या कहा परन्तु मैंने उनका आशीर्वाद दोहरा कर ही इसे चुप कर दिया। उन्ही से मुझे मालूम हुआ है कि इसकी शिक्षा दीक्षा की गाथा एक कपोल कल्पित कहानी है, जिसका अस्तित्व ससार म कभी था ही नही। मैंने सुन कर सारी परिस्थिति समझ ली और फिर इस बात की कोशिश की कि अब भी किसी तरह से यह योग्य बन जाय। 'एकाउन्टेंसी का स्पेशल क्लास इसे दिलाया गया। साल भर की फीस दी। कलकत्ते का कुल खच निभाया मगर दो तीन महीने म ही सब छोड छाड कर फिर घूमने फिरने लगा। पिछले साल भर स कोई काम नही कर रहा है। जितना भी रुपया आता है अपने नाम बैंक म जमा कराता है। मेरे नाम एक पैसा भी नही। आन्त इस बुरी तरह स बिगडी

हुई है कि कुछ भी कहा कि गाली, लात ठोकर। ऐसे बुरे आदमी की क्या कोई भी शिक्षिता नारी ऐसी हरकतें सहती ?'

"अपने पावो मे किरण कुल्हाडी मार रहा है।'

"इन्सानियत होती तो इतना सहारा पाकर अब तक इन्सान बन जाता। विवाह के पहले मेरी यह हालत नही थी केदार बाबू। मेरा सारा खून इसने और इसकी चिन्ता ने चूस डाला है।"

बहुत बुरा करता है वह।"

'कम्पाउन्डर के लिए तो मैं अफसर ही हू। उसे यदि किसी सहायता की जरूरत हो तो मेरे सिवाय वह और किससे कहे। इसक सिद्धान्त के अनुसार मुझे उससे या और किसी से कोई बात न ी करनी चाहिए। मेरे पेशे के नाते क्या यह कभी सभव हो सकता है ?

पागल है।'

"पागल नहीं है, बदमाश है। अपने निश्चय के हर पहलू पर मैंने विचार कर लिया है, केदार बाबू। इससे छुटकारा या मौत दोनों म से एक चीज ही मुझे शान्ति देगी। सुख मेरी किस्मत में, मैंने समझ लिया था ही नहीं। यह कहते कहते छाया का दुख और उभर आया और आसू उसकी आखों से गिरने लगे। उन्हें पोंछ कर वह फिर बोल उठी, 'आप क्या कहते है? कर सकेंगे या नही ?'

क्यो नही कर सकूगा ?"

"मुझे क्या करना होगा ?'

"कुछ निश्चय करें उससे पहले बहतर है कि किरण को यहा एक बार बुला लिया जाय।'

"उससे कोई फायदा नही, केदार बाबू। यहा आने पर वह एक

बार भला बनने की कोशिश करेगा। मैं निश्चय कर चुकी हूं कि आयन्दा हम साथ नहीं रह सकते। जब तक वह उस घर में है मैं वहां न जाऊंगी। आप मेरी उपस्थिति से यदि किसी तरह की भीरुता महसूस करते हैं तो मुझे यहां से किसी और जगह चले जाने में भी आपत्ति नहीं है। मैं कैसे ही हो उससे सम्पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद चाहती हूं।

उसे यहां बुला लेने से ही तो आपको कोई बाधा नहीं पहुंचती है।

पहुंच सकती है केदार बाबू! उसके यहां आने पर आप मेल की कोशिश करेंगे जो इस जीवन में अब असंभव है। जो कुछ आप कहेंगे वह इस समय मान जायगा—वचन भी दे देगा परन्तु उस वचन को निबाहना उसकी शक्ति के बाहर है। बहुत बार उसने ऐसा किया है।

आप निश्चिन्त रहें। मैं नहीं चाहता कि मेरा कैसा ही मित्र मेरे लिए यह कहे कि उसकी जानकारी के बिना मैंने उसकी दुनिया बर्बाद कर दी। सम्बन्धविच्छेद का सवाल जीवन में जन्म और मृत्यु से कम महत्व नहीं रखता छाया देवी! एक मित्र के हाथों परोक्ष में उसकी दुनिया नहीं उजड़नी चाहिए। यह कह कर केदार ने रामू को आवाज दी। कागज कलम लेकर किरण के नाम एक सन्देश लिखा। शब्द थे—

किरण भैया!

श्रीमती छाया देवी मेरे पास एक कानूनी सलाह व सहायता के लिए आई हैं जिसका सम्बन्ध तुम्हारे जीवन से है। चाहता हूं कि परिस्थिति पूर्ण रूप से बिगड़े उसके पहले ही तुम उसे संभाल लो।

तुम्हारा
केदार

इस सन्देश-पत्र को समेट कर केदार ने रामू को पकड़ा दिया और उसे आज्ञा दी कि वह किरण बाबू को तुरन्त हाथों हाथ दे आवे।

छाया बोली— आप नहीं जानते केदार बाबू कि वह कैसा आदमी है। दुनिया में ऐसा आदमी होगा ही नहीं। यदि कुछ भी ऐसे हों तो मेरी समझ से दुनिया का अन्त ही आ जाये।

किरण के विषय मे छाया को जसे जैसे उसके जीवन की घटनाए याद आती गई वसे वैसे ही आवेश में वह उसे अपने ढङ्ग से कहती गई। केदार मौन श्रोता बना सुन रहा था।

'केदार बाबू! मेरी मा साक्षात् देवी है। पिताजी के देहान्त के बाद उस हम लोगों के पालन पोषण के लिए नौकरी करनी पड़ी। उस समय मैं ८ वर्ष की और मेरी बड़ी बहिन ११ वर्ष की थी। हिन्दू समाज में एक विधवा को जो भी मुसीबतें आ सकती हैं उन सबको भोगते हुए उसने हमें बड़ा किया पढ़ाया लिखाया। उसी के परिश्रम और त्याग के फलस्वरूप आज मैं इस योग्य हूं। आज भी मुझे बेटी समझ कर वह मेरे लिए सर्वस्व त्याग करने को तय्यार है। हाल ही में अपनी सारी सम्पत्ति लगाकर उसने मेरे लिए एक बहुत अच्छा मकान बनवा दिया है। उसने मुझे यह सलाह देकर कौनसा पाप कर दिया कि मुझे अपनी आमदनी में से कुछ न कुछ जरूर बचाना चाहिए? मैंने भी उससे यह कह कर कौनसा गुनाह कर दिया कि मेरी आमदनी का एक हिस्सा बचत के लिए हर माह मेरी मा के पास भेज दिया जाय। उसे तो खाना है नहीं।"

दो एक क्षण चुप रह कर वह फिर बोल उठी— अभी हाथ-पैर काम करते हैं। न जाने कल क्या हो? बचा हुआ कहीं भाग तो नहीं जायगा, और हर माह फिर अपने रिश्तदारों को भी तो मनि

जाते हैं। उनके तो बाकि मिल भी भाता ता है। रुपये सब मान नाम जमा कर रखे हैं। कहां हैं कितने हैं मुझे कुछ मालूम नहीं। कल कुछ हो जाय तो मुझे उन रुपयों को कौन देगा। उसी के परिवार वाले आकर मालिक बन बैठेंगे, मैं हो बीमार हो जाऊं और प्राण निकल बठें तो भी मेरा क्या सहारा है।

आखिर कुमार ने मुंह खोला—'यह गलतफहमी का शिकार है, छाया देवी!

'यह गलतफहमी नहीं कुमार बाबू! गलतफहमी हो तो मिटाई जा सकती है। परन्तु हमारे घर में जो कुछ भी होता है समझ-बूझ कर होता है। मैं उनकी मनोवृत्ति से परिचित हूं। वह क्या है क्या नहीं है मुझ से तिल भर छिपा हुआ नहीं है। फिर भी बात बात में आंख मिचौनी होती रहती है। मैं जानती हूं कि आजकल नौकरी मिलना कितना कठिन है विशेषकर उस आदमी को जिसके पास कोई प्रमाणपत्र नहीं। नौकरी नहीं है इस बात को मुझ से छिपाने की क्या जरूरत है और यह छिपाई भी मुझ से कब तक जा सकती है? लोगों के पैसे उधार करने की कोई जरूरत नहीं और अगर कर लिए तो उन्हें देना चाहिए। न दे सकें तो कम से कम उनसे लड़ाई झगड़ा तो नहीं करना चाहिए। पर सब उल्टी बात। जरूर उधार करेंगे धेला पास न होने पर भी रोज सुबह शाम मांगने वालों का फिराना पैसा पास होने पर एक कच्ची कौड़ी भी किसी को देंगे नहीं। यही रोज मैं देखती हूं। देखते देखते तंग आ गई हूं। यदि परिस्थिति को सुधारने के लिए अपने पास से पैसा दे देती हूं तो जनाब का अपमान होता है। पास पड़ोसी कहते हैं कि डाक्टरनी किस बदमाश के हाथ पड़ गई। अपने स्वामी के लिए लोगों के मुंह की यह बात मुझे आप सोच सकते हैं, कितनी बुरी लगती है। उसकी तरफ से मुझे सुख नहीं

सहायता नहीं आराम नहीं। उसके विषय में यह सुनने तक का सौभाग्य भी नहीं कि छाया का पति एक इन्सान तो है। एक औरत का दुख इससे अधिक और क्या हो सकता है केदार बाबू!' छाया की आखों में फिर आसू आ छलके। वह उन्हें अपने अन्चल से पोछने लगी।

'परमात्मा सब ठीक करेगा, छाया देवी!'

'मैं जानती हू कि जो कुछ मैं करने जा रही हू उसका मुझे शेष जीवन में दुख होगा परन्तु इस दर्दभरी परिस्थिति से तो कैसी भी दुखमयी हालत अच्छी ही होगी।' —केदार उसके शब्दों में उसके गहन दुख की सीमाओं को समझने लगा।

छाया के आसू रुक नहीं रहे थे। इसी कारण उसका अन्चल भी हर समय उसके हाथ में ही रह रहा था। उसकी स्मृति में किरण से सम्बन्ध रखने वाली एक एक घटना एक एक करके आ रही थी और प्रत्येक के साथ एक दुखभरा आवेग आसू बन कर आखों से बाहर हो रहा था। केदार की समझ में कुछ भी न आया कि क्या करे—कैसे समझाए। उसके लिए भी आज की यह परिस्थिति नई ही थी। वह सुनता गया।

छाया को यहा आए आध घंटे के लगभग हो गया था। केदार ने उसका ध्यान दूसरी ओर खींचने के उद्देश्य से पूछा— चाय पीने का समय हो गया आपका।

होने दीजिए।

क्यों मैं लाता हू न। छाया के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना केदार बाहर चला गया।

छाया अकेली कमरे में अधिक देर तक न बैठ सकी। वह भी थोड़ी देर बाद रसोईघर की ओर, जहा केदार गया था, चली गई। अपनी

उद्विग्नता म उससे अकल म बठन नहीं बन रहा था। वह पहुचो उस समय केदार चूल्हा फूक रहा था। यह देखकर छाया बोली, 'इस मैं ठीक कर लेती हू। आप मेरे लिए मजन साबुन और तौलिया ठीक कर दीजिए।'

मु ह हाथ धोएगी ?

'जी।

केदार वापिस पहुँचा तब तक आग जल चुकी थी। चाय के लिए पानी चूल्हे पर चढा दिया गया था।

छाया हाथ मु ह धोने लगी। केदार चूल्हे के पास बठ गया। अभी उन्हे इस तरह बठे दस पन्द्रह पल ही बीते होंगे कि किसी न पुकारा— केदार बाबू ! और साथ ही चार पाच व्यक्ति रसोईघर के अहाते म आ घुसे।

आवाज सुन कर छाया ने खुले हुए अपने बालो पर साडी का अचल खींच लिया। केदार रसोईघर से बाहर निकला तो उसने देखा कि चार पाच परिचित व्यक्ति खडे हुए हैं और छाया की ओर आश्चय भरी दृष्टि से देख रहे हैं। केदार को बाहर आया देख एक बोल उठा— क्षमा कीजिएगा।'

और सबके सब आहाते से बाहर निकल गये। केदार उन्हे कमरे की ओर ले गया। चलते चलते एक ने पूछा— यह तो डाक्टरनी है।'

हा।

आजकल यहीं रहती है ?

"नहीं तो।

"घबरात क्या हैं वकील साहब ? प्रश्न के समय अथ

भरी मुस्कराहट उसके मुँह पर थी। यौन विकृति का यह स्पष्ट प्रदर्शन था।

सर। साथ ही उसने अपनी मुद्रा बदल ली। बोला— हम एक कामवश आए हैं। मेरे ये मित्र किसी का गाना कराना चाहते हैं। जगह की तजवीज नहीं बैठ रही है। यदि तुम्हारे यहा इंतजाम कर लिया जाय तो तुम्हें तो— ''

केदार ने कटु दृष्टि से अपने मित्र की ओर देखा और गंभीर स्वर से बोला—"तुम्हारे यहा क्यों नहीं ?"

"मेरे यहा, तुम जानते हो ठीक नहीं है।"

'और इनके यहा ?"

'इनके यहा भी ठीक नहीं।

फिर मेरे यहा कैसे ठीक है ?"

"इसलिए, कि तुम अकेले हो। यहा सब काम में पूरी स्वतंत्रता रहेगी। दूर का घर है कोई कुछ देखेगा भी नहीं।'

सुन कर केदार विचार मग्न हो गया। पर प्रश्नकर्त्ता को उत्तर की जल्दी थी। बोला—"क्या कहते हो ?'

"मुझे सोचना पड़ेगा।'

"कब तक ?'

"कल तक।"

'साफ नहीं' क्यों नहीं कह देते ?"

'मेरी आदत नहीं है।

'अब आदत डाल रहे हो। क्यों ?"

'किससे ?'

"और किस स ?"

'अच्छी बात है ।

'उसकी सलाह व सहायता क लिए आई हूँ ।'

छाया !' इतना कह कर हाथ उठा ज्यो ही छाया पर आक्रमण के लिए वह बढा कि केदार न उसक हाथ को पकड लिया और डाटा—

'किरण बाबू !'

छोड दो, केदार बाबू !'

'होश म आओ, क्या पागलपन करत हो ? साथ ही वह उन दोनों क बीच म खडा हो गया ।

'औरत की जात ठोकर से ही मानती है केदार बाबू ! यहा आ गई इसलिए बच गई । यदि और किसी जगह आज इसे पाता तो जान लिए बिना नही छोडता ।

'देखते हैं न केदार बाबू !'

केदार बाबू क्या देखेंग ? पति-पत्नी के झगडे मे कोई नही बोल सकता ।

उस झगडे का आज मैं अन्त कर दूगी ।'

'तेरी शक्ति के बाहर की बात है यह । एक हिन्दू औरत को पति के आगे उसी की मर्जी के मुताबिक रहना होगा । वह उससे इस जीवन म छुटकारा नही पा सकती ।'

इस बातचीत के समय किरण की तीव्र दृष्टि छाया पर आरोपित थी । छाया इस समय अपनी भावुकता के आवेग में किरण की ओर

बिल्कुल नही देख रही थी । उसकी मुद्राओं से यह अच्छी तरह स्पष्ट था कि वह उसकी ओर देखना भी नही चाहती है । किरण का क्रोध दब बेकार न रहा —

'नही मानोगे किरण ?' शब्दों के साथ ही नितांत निश्चिन्तता उस पर छा गई ।

'मैं सब माने हुए हू बेकार भय्या ।' किरण के इन क्षीण शब्दों में कितनी निराशा दौर्बल्य था यह तो वही जाने पर इतना स्पष्ट था कि उसकी स्थिति उसी के मुताबिक उसके हाथ की बात नही थी ।

क्या बात है ?'

उसी से पूछो ।

'उनसे मैं सुन चुका हू ।

'फिर वही बात है ।'

फिर भी ?

दूसरा पति चाहती है । मैं उसे पसन्द नही । तुम इन्तजाम कर दो । साथ ही एक भीषण सूखी हसी उसके मुह से निकल पड़ी ।

'रास्ते नही आओगे ?'

'क्या रास्ते आऊ भाई । अच्छा है तुम इस मर्ज से मुक्त हो ।' इतना कह वह कुर्सी पर लट सा गया । आखें बद हो गइ । मालूम होता था कि उस समय उसके मन की हालत बहुत ही दर्दभरी है । उसके शब्द भी इस उत्तर के वक्त क्षीण व गम्भीर थे ।

'मेरा पत्र मिला ?

'नही ।

"थोड़ी देर पहले रामू लेकर गया है।'

'पहुंचा तो नहीं।'

'यह हालत कब तक चलती रहेगी?'

'जब तक साथ रहेंगे।'

'कोई उपाय?

'कोई भी नहीं।

'फिर अच्छा है आपस में ही तै कर लो।'

'यह असम्भव है। जो दूसरों से ही तै करना चाहे वह आपस में त कैसे कर सकती है?'

छाया इतनी देर सुन रही थी। किरण के आखिरी प्रश्न पर बोल उठी, मुझे इनमें कुछ त नहीं करना। जो कुछ इन्होंने मुझ से अब तक लिया है, ये रखें। मुझे उसमें से एक कौड़ी भी वापिस नहीं लेनी। और भी जो चाहें ले जायें पर खुद भी चले जायें। मुझे जीवन में अब सुख की आशा नहीं मैं सिर्फ शान्ति चाहती हूं।"

सुन लिया? प्रश्न किरण का था। परन्तु प्रश्न के साथ ही उसे फिर उसके आवेग ने आ दबाया। छाया की ओर मुंह करके बोल उठा, अभी त्यागपत्र ले आओ, केदार बाबू! मैं इस त्यागने के लिए तैयार हूं। आप इसी समय लिखा पढ़ी कर दीजिये। उसने अपना कलम जेब से निकाल कर खोल लिया।

फिर वही पागलपन!" केदार बोला।

'आप बाधा क्यों देते हैं, केदार बाबू! यह तो एक दिन होना ही है। बेहतर है आज ही हो जाय—" छाया ने कहा।

इसी समय।

किस भाँति है ? भाई हो मैं इसीलिए हूँ।

आप भी नाराज न रहती ?

इसी है तुम्हारे ऐसी औरत ? फिर किरण को क्रोध का आवेश आ गया। दाँत पीस कर वह उठ बैठा। चाहता था कि छाया की सारी सजी ठोकर, मुक्का से निकाल दे मगर फिर कमार ने उसे पकड़ कर कुर्सी पर बैठा दिया। इस समय उसकी आँखें आग बरसा रही थीं सांस तीव्र गति से चल रही थी और सारा शरीर काँप रहा था। औरत का स्वाभिमान इस आवेश में प्रज्ज्वलित हो जाग उठा। किरण की इस हरकत को उसने अपना अपमान समझा। साहस की मूर्ति बन गंभीर स्वर में वह बोल उठी—

अपने ये इतने बड़े अधिकार मुझ पर आपनी किस बात को लेकर तुम समझते हो ? क्या ऐसी चीज तुम्हारे में है जिस पर तुम्हें इतना गर्व है ? शादी करके ही तुमने मुझ पर वे कौन से एहसान कर दिए जिनके कारण मुझे तुम्हारा तिल भर भी एहसानमन्द रहना चाहिए ? तुम्हारी आदत से परिचित होकर कौन ऐसी औरत दुनिया में हो सकती थी जो तुम्हें पति कह कर तुम्हारी पूजा करती ? दुनिया वाले परिस्थितियों से अपरिचित रह सकते हैं पर मैं तो नहीं रह सकती।'

'अफसोस है छाया देवी कि आप चुप नहीं रह सकतीं।''

पहले यह ऐसी नहीं थी कमार बाबू ! इसकी माँ ने आकर इसे ऐसी शिक्षा दी है।

झूठ। उसने मुझे कोई शिक्षा नहीं दी, जिससे तुम्हारे और मेरे संबंध खराब हों।'

उसने तुम्हें यह नहीं कहा कि तुम अपना रुपया खुद रखो।'

"यह कह कर उसने कौनसा पाप कर दिया ?'

देख लिया केदार बाबू ! मैंने यह कह कर कौनसा अपराध कर दिया कि स्त्री पुरुष के बीच मा-बाप भाई बहिन कोई नही आना चाहिए ?"

वह मेरी मा है। उसका धम है कि वह मुझे मेरे हित की शिक्षा द। मेरा धम है कि उसकी उस शिक्षा को मैं मानू।"

"उसका यह भी धम है कि अपनी लडकी को अपने पति के विरुद्ध उकसाए ?'

तुमने उसक विरुद्ध हजारो बातें मुझ से कही हैं, यहा तक कि वेश्या तक उसे कह डाला परन्तु उसने ।

' मैं अब भी कहता हू कि वह वेश्या स भी बत्तर है।

फिर उसकी लडकी उससे अच्छी नही हो सकती। और यह कहते कहते ही अपने आवग क जोश म वह उठ खडी हुई और अपनी हाथ की एक पुरानी सी चूडी का एक ही झटके म मरोडा देकर यह लो' क साथ उसन तोड फका। कदार और किरण नारी की इस ओजस्विता और आवग को देख कर दग रह गए।

छाया कहती गई—'सभालो अपनी इस सोहाग की लाश को। वश्या की बटी को सोहाग के इस निशान की कोई आवश्यकता नहीं। खबरदार, जो मुझे अब से पत्नी पुकारा। वेश्या की बेटी छाया का काइ पति नही है।'

'देखते हैं न केदार बाबू ?' किरण के दात एक दूसरे से पिस कर कडक उठे। आवेग की अधिकता के कारण बोलन क पहले ही वह उठ बैठा। इधर उधर, आस पास किसी चीज की फेंक कर मारने क लिए, उसने खोज की। केदार फिर उनके बीच खडा हो गया।

तुम पुरुष हो किरण ! तुम्हें ही शान्त रहना चाहिए। तुम्हें समझने की जरूरत है कि नारी का आवेग तीव्र किन्तु क्षणिक होता है।

'इन्सान की सहन शक्ति से बाहर का यह भाग है केदार बाबू ! मैं सह रहा हूं कारण इन्सान नहीं हूं। इतना कह अपने हृदय के भावों को जहां का तहां मसोस वह फिर एक बार कुर्सी पर लटक गया। उसकी आंखें बन्द हो गई। कमरे में एक भीषण शान्ति छा गई जिसका नतीजा न जाने क्या होने वाला था।

थोड़ी देर बाद किरण की आंखें खुली मगर इधर उधर वह किधर भी न देख सका। शोक और दुख की मूर्ति बना अपनी कुर्सी में वह चित्रित सा पड़ा पड़ा था। आंखें शून्य में आरोपित थी और मालूम होता था कि अतीत की जीवन घटनाएं क्रम से उसके स्मृति पटल पर सजग हो होकर विलीन हो रही हैं। उसने क्या देखा क्या न देखा यह तो वही जाने परन्तु इतना सच है कि उसकी अतीत की मधुमयी स्मृति विषमयी कहानी में परिवर्तित हो गई थी। देर की चुप्पी के बाद उसके मुंह से घृणा व क्षोभ भरी एक चीख-सी निकली, 'मुझे शादी करनी ही नहीं चाहिए थी। जैसा भी मैं था अच्छा था।'

'तुम पागल हो।' —केदार ने कहा।

'दोनों में से एक जरूर है ! खैर ! मैं जा रहा हूं।'

इतना कह किरण एकाएक उठ बैठा और एक निश्चय पर पहुंचे हुए पुरुष की तरह तुरन्त अपनी धुन में कमरे के बाहर निकल गया। मालूम होता था उसने यहां से बाहर जाने का निश्चय एक शब्द के साथ ही किया था कारण 'मैं जा रहा हूं' वाक्य उसके मुंह से एक असाधारण तेजी से निकले थे और वह तेजी उसके वक्तव्य के पहले हिस्से से मेल नहीं खाती थी।

किरण उठते ही इतनी जल्दी पास बठे हुए कदार की पहुच के बाहर हो गया कि उसका उसे पकड कर वापस बिठाना असभव हो गया। वह किरण, ओ किरण! पुकारता हुआ कमरे के बाहर तक गया मगर किरण की चाल बहुत तेज थी। वह यहा से भाग-सा रहा था।

कदार ने परिस्थिति को इस तरह दुखात होते देख दौड कर किरण को पकड लिया और समझाने के स्वर म कहा—

'मेरे सारे प्रयत्नों पर पानी फेर तुम चले जाओगे ?

'तुम फिजूल कोशिश कर रहे हो, केदार भाई।'

'फिजूल ही सही। तुम पुरुष हो। तुम्हे लोग क्या कहेंगे ?

'कुछ भी कह ? लोगों की बातो से डरने की मेरी आदत कभी नही थी। वे तो क्या घर क लोगो न भी कभी मुझे अच्छा नही कहा। उन सबकी परवाह न करने की मेरी वर्षों की आदत है।

फिर मेरी कोशिश की सफल नही होने दोगे ?'

तुम नही जानते, कदार बाबू! एक बार असफल होन क बाद औरत के आगे इसान सफल होता ही नही।'

किरण के शब्दो मे निपट निराशा झलक रही थी। उसकी यह उक्ति हो सकता है अनुभव पर आश्रित हो। परन्तु केदार न उसकी एक न सुनी। घर के सबसे बाहरी फाटक से वह उसे वहा पकड कर अदर ले ही आया।

इस बार केदार उसे एक दूसरे एकात कमर म ले गया। उसे एक कुर्सी पर बिठा कर और स्वय उसके सामने बठ कर केदार ने पूछा बोलो, क्या कहते हो '

क्या सुनना बाकी रहा है ?'

मैं नही चाहता कि तुम्हारा सम्बध विच्छेद हो।

यह असम्भव है केदार बाबू !

'कारण ?

कारण बताने से कोई फायदा नहीं। सुनकर तुम्हें और भी अधिक दुख होगा।

'उसने जो कुछ कहा वह झूठ है ?'

नहीं वह झूठ नहीं बोलती।'—केदार को किरण के शब्दों पर आश्चर्य हुआ। मगर अविश्वास की कोई वजह उसने नहीं देखी। बोला फिर ?

पुरुष विशेष के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए यह वह नहीं जानती।'

"इससे तुम्हें नुकसान ?'

परिस्थितियो से मारा पुरुष हर बात को उल्टी लेता है केदार बाबू! उस समय उसकी हालत ऐसी नहीं रहती कि वह सीधी-सी बात को भी ठीक तरह समझ सके। दुनिया के थपेड़े खाकर इन्सान घर में शरण की आशा करता है परन्तु जब उसकी यह आशा निराशा बन जाती है तब उससे कहीं ठहरते नहीं बनता।

'तुम्हारी परिस्थिति तो ऐसी नहीं है।"

'तुम इसे क्या जानो केदार बाबू? मनुष्य का बाहरी रूप कुछ और होता है और भीतरी कुछ और! दुनिया जैसी दिखाई देती है वैसी वास्तव में है नहीं। कौन जाने किस हसते हुए चेहरे की वास्तविक स्थिति क्या है? दुनिया मे हसी के पीछे आसू और आसुओं के पीछे हसी छिपी है। किसी को कुछ मालूम नहीं कि शात से चेहरे का हृदयस्तल कितने तूफानी समुद्रों की भयावनी हलचल का शिकार बन रहा है।'

'इतना समझकर भी अपने पर अधिकार नहीं रख सकते ?'

समझ परिस्थिति की गुलाम है केदार बाबू ! दुनिया मे जो जिन्दा रहना चाहता है वह यह भी चाहता है कि वह इज्जत से जिन्दा रहे। मगर इज्जत पाना उसके हाथ की बात नही रहती। वह इज्जत के पीछे भागता है परन्तु इज्जत उससे दूर भागती है।

'तुम्हें उसके खिलाफ क्या शिकायत है ?'

'शिकायत ?

"हा !'

"कुछ नही।'

'फिर ?'

'मजबूर न करो, केदार भैया। मैं जाता हू।'

साथ ही वह उठ खडा हुआ। केदार ने फिर एक वार उसे पकड कर बिठाया। बोला—'अपने केदार भया को भी अन्धेरे म रखना चाहते हो, किरण ?'

'नहीं केदार भैया। अपने मुह से सब कुछ स्वीकार करने की शक्ति मेरे मे नहीं है। मैं जो कुछ भी हू तुम्हारे सामने हू। यह भी जानता हू कि तुमसे कुछ भी छाया ने छिपाया नही होगा। फिर उस कहानी को मेरे मुह से ही सुनकर तुम क्या हासिल कर लोगे ?"

'तुम्हारे मुह से सुनकर मुझे सन्ताप होगा किरण ! मुझे छाया के शब्दों की सत्यता मे शक मालूम होता है, इसीलिए तुम्हे मजबूर कर रहाहूँ।

'वह झूठ नही बोलती, केदार भया ?"

"पर तुम नहीं कहोगे ?"

'सुनना ही चाहते हो तो सुनो ! अपने विषय मे अब सब

आश्रय सा पकड लिया। मैं भी अपने अब तक के जीवन म किसी को इस तरह अपना न पाया था। इसे पाकर मैंने अपनी एक आत्मीय की आवश्यकता को पूरी होते देखा। इसके सर्वस्व समर्पण ने मेरे जीवन म अधिकारो की सृष्टि कर दी थी जिसके उपयोग का एकाधिकार मुझे प्राप्त था।

इसके आग्रह पर इसे मैं अपने घर ले गया। मेरी इच्छा वहा जाने की नही थी फिर भी मुझे जाना पडा। वहा पहुँचने पर पिताजी ने, मालूम होता है इसे मेरी जीवन कहानी कही और मुझ पर अधिक विश्वास न करने की भी सलाह दी।

'सम्मान की कमी के कारण मेरा दिल वहा नही लगा और मैंने इससे वापिस कलकत्ता लौट चलने की सलाह दी। मेरे कहने पर यह लौट आई मगर इस बार मेरे प्रति इसके पहले जसे खयाल न थे।

आते ही इसने मुझे कुछ काम करने के लिए कहा। पढी लिखी थी इसलिए यह जरूर नही कहा कि मैं कुछ भी पास नही हू। अत मुझे कुछ पास कर लेना चाहिए। मैं इसका मतलब समझ गया और मैंने स्थानीय एक स्कूल म 'एकाउटेन्सी' का एक कोर्स ले लिया।

'इसी बीच इसकी मां जो अध्यापिका है इसके पास आई। मेरे विषय में कुछ बात आपस म जरूर हुई होगी। कुछ दिन रह कर वह चली गई। मुझे उसने कुछ भी नही कहा परन्तु इतना उसके व्यवहार स स्पष्ट था कि वह अपनी लडकी के लिए मुझे किसी अश म भी योग्य नही समझती है।

'विवाह के बाद इसकी कमाई के चार पाच सौ रुपये सब मेरे ही हाथ म आते थे। थोडे ही दिनो म मैं उन रुपयो पर अपना अधिकार समझने लगा और इसके साथ ही उन्हे उपयोग म लाने का भी। रुपये हाथ म आने से सम्पन्नता का एक अहम् भाव मेरे म जाग्रत हो उठा और उसकी

पुष्टि नारी के सबस्त्र समर्पण ने कर दी। मैं अपनी उस स्थिति को अक्षय नहीं तो चिरस्थायी जरूर समझने लगा और इसीलिए मैंने पचास रुपये की रकम हर महीने अपने चाचा, अपनी विधवा बहिन व उसके लड़कों के लिए जो स्कूल में पढ़ते थे सहायता रूप में इसकी सलाह से भेजनी शुरू कर दी। तीस रुपया चार बच्चों के लिए व दस-दस रुपया चाचा व बहिन के निर्वाह के लिए इस तरह पचास मासिक मैं भेजता था।

छः सात महीने तक तो मेरी सम्पन्नता का स्वांग सुचारु रूप से चला परन्तु बाद में मेरे अधिकारों में हस्तक्षेप होने शुरू हो गए। मनुष्य को अधिकार न मिलने पर उतना रंज नहीं होता जितना उसे अधिकार मिल कर छीने जाने पर होता है केदार बाबू! मेरी भी वही हालत थी। धीरे-धीरे मुझे महसूस होने लगा कि मेरे अधिकारों की सृष्टि दिन पर दिन सीमित हुई जा रही है। पैसा सब अब भी मेरे ही पास आते थे पर उन्हें मन के मुताबिक खर्च करने में मुझे दूसरे की मर्जी की ओर भी देखना पड़ता था। शादी के बारह महीने में ही मुझ पर इतना नियन्त्रण कर लिया गया कि मुझे महसूस होने लगा कि मेरे पास जो रुपये आते हैं उन पर मेरा अब बहुत ही सीमित अधिकार है।

"खैर! मैंने अपने सारे खर्च बन्द कर दिए। परन्तु पचास रुपया भेजने का खर्च मैं बन्द न कर सका। इसका एक कारण था मेरी कमजोरी और दूसरा मेरी मानवता। कमजोरी इसलिए कि करीब सवा साल तक सम्पन्नता दिखाने के बाद घर वालों के आगे अकिंचन बनते शर्म लगती थी। मानवता इसलिए कि साधनहीन मेरे इन आश्रितों की मजबूरियां सहने-सहने की शक्ति मेरे में जीवन की इस मंजिल पर बिल्कुल नहीं बची थी। मैं मोहल्लाजों की मजबूरियों से व्यक्तिगत रूप से परिचित था और इसलिए नहीं चाहता था कि वैसी ही परिस्थितियों की पुनरावृत्ति किसी और के जीवन में हो। आशा देकर निराश करने में मैंने मानवता की

आश्रय सा पकड लिया । मैं भी अपने अब तक के जीवन म किसी को इस तरह अपना न पाया था । इस पाकर मैंने अपनी एक आत्मीय की आवश्य कता को पूरी होते देखा । इसके सर्वस्व समर्पण न मेरे जीवन म अधिकारो की सृष्टि कर दी थी जिसके उपयोग का एकाधिकार मुझे प्राप्त था ।

इसके आग्रह पर इसे मैं अपने घर ले गया । मेरी इच्छा वहा जाने की नही थी फिर भी मुझे जाना पडा । वहां पहुँचने पर पिताजी ने, मालूम होता है इस मेरी जीवन कहानी कही और मुझ पर अधिक विश्वास न करने की भी सलाह दी ।

स मान की कमी के कारण मेरा दिल वहा नही लगा और मैंने इससे वापिस कलकत्ते लौट चलने की सलाह दी । मेरे कहने पर यह लौट आई मगर इस बार मेरे प्रति इसके पहले जसे खयाल न थे ।

आते ही इसने मुझे कुछ काम करने के लिए कहा । पढी लिखी थी इसलिए यह जरूर नही कहा कि मैं कुछ भी पास नहीं हू । अत मुझे कुछ पास कर लेना चाहिए । मैं इसका मतलब समझ गया और मैंने स्था नीय एक स्कूल म एकाउन्टेन्सी का एक कोर्स ले लिया ।

"इसी बीच इसकी मा जो अध्यापिका है इसके पास आई । मेरे विषय म कुछ बात आपस में जरूर हुई होगी । कुछ दिन रह कर वह चली गई । मुझे उसने कुछ भी नहीं कहा परन्तु इतना उसके व्यवहार मे स्पष्ट था कि वह अपनी लडकी के लिए मुझे किसी अंश म भी योग्य नही सम झती है ।

'विवाह के बाद इसकी कमाई के चार पाच सौ रुपये सब मेरे ही हाथ म आते थे । थोडे ही दिनो म मैं उन रुपयों पर अपना अधिकार समझने लगा और इसके साथ ही उन्हे उपयोग मे लाने का भी । रुपये हाथ म आने से सम्पन्नता का एक अहम् भाव मेरे में जाग्रत हो उठा और उसकी

पुष्टि नारी के सवस्व समपण ने कर दी । म अपनी उस स्थिति को अक्षय नही तो चिरस्थायी जरूर समझने लगा और इसीलिए मैंने पचास रुपय की रकम हर महीने अपने चाचा, अपनी विधवा बहिन व उसके लडको के लिए जो स्कूल म पढते थे सत्यायना रूप मे इसकी सलाह से भेजनी शुरू कर दी । तीस रुपया चार बच्चो के लिए व दस-दस रुपया चाचा व बहिन के निर्वाह के लिए इस तरह पचास मासिक मैं भेजता था ।

'छ सात महीने तक तो मेरी सम्पन्नता का स्वांग सुचारु रूप से चला परन्तु बाद म मेरे अधिकारों में हस्तक्षेप होने शुरू हो गए । मनुष्य को अधिकार न मिलने पर उतना रज नहीं होता जितना उसे अधिकार मिल कर छीने जाने पर होता है केदार बाबू ! मेरी भी वही हालत थी । धीरे धीरे मुझे महसूस होने लगा कि मेरे अधिकारों की सृष्टि दिन पर दिन सीमित हुई जा रही है । पसे सब अब भी मेरे ही पास आते थे पर उन्ह मन के मुताबिक खच करने मे मुझे दूसरे की मर्जी की ओर भी देखना पडता था । शादी के बारह महीने म ही मुझ पर इतना नियन्त्रण कर लिया गया कि मुझे महसूस होने लगा कि मेरे पास जो रुपये आते हैं उन पर मेरा एक बहुत ही सीमित अधिकार है ।

"खर ! मैंने अपने सारे खच बन्द कर दिए । परन्तु पचास रुपया भेजने का खच मैं बन्द न कर सका । इसका एक कारण था मेरी कमजोरी और दूसरा मेरी मानवता । कमजोरी इसलिए कि करीब सवा साल तक सम्पन्नता दिखाने के बाद घर वालों के आगे अकिंचन बनते शम लगती थी । मानवता इसलिए कि साधनहीन मेरे इन आश्रितों की मजबूरियां देखने-सहने की शक्ति मेरे म जीवन की इस मजिल पर बिल्कुल नहीं बची थी । मैं मोहताजों की मजबूरियों से व्यक्तिगत रूप से परिचित था और इसलिए नहीं चाहता था कि वसी ही परिस्थितियों की पुनरावृत्ति किसी और के जीवन मे हो । आशा देकर निराश करने म मैंने मानवता की

चाहिए ? कपडा नहीं चाहिए या खच का पैसा नही चाहिए ? दोना म से एक का भी अभाव आ जाने पर उसकी इज्जत पर आ बनती है। मुझे अभाव की सूरत म सिफ एक ही उपाय सूझ पडा और वह था कज। मैंन कर्ज लेना शुरू किया लोगो ने भी मेरी सफेदपोशी मे अपने पैसे को दिन दूना और रात चौगुना होते देखा। व देते गए और मैं लेता गया। नतीजा तो मैं पहले से ही जानता था। वही हुआ। चार पाच महीने के बाद सफेदपोशी की हालत चौपट हो गई। सब समझ गए कि मैं सिफ सफेदपोश ही हू। इसके महीने पन्द्रह दिन बाद ही मेरे ऋणदाताओ के आगे मेरा रहस्य प्रगट हो गया। आए दिन गली-बाजार म वे मुझे तग करने लगे। मैंने उन्हें घर की नीव बताई। वहा पहुँचने पर बात प्रदशन पर पहुच गई। सब जगह गिर जाने पर भी मुझे घर में गिरना मजूर नहीं था। नारी क अभिमान के आगे मेरा स्वाभिमान न झुक सका। उसके आगे अपना रहस्य प्रगट करने म मैंने इन्सानियत की—पुरुष के पौरुष की—दुहाई देनी। पूछने पर घर मे तो बराबर मैं यही कहता गया कि मेरे खच मेरी नौकरी से चलते हैं। मैं जानता था कि मेरी बात पर विश्वास नहीं किया जा रहा है परन्तु सच्ची बात अपने मुह स कहने मे मुझे शम लगती थी और साथ ही पूछने वाले पर भयकर रोष भी उठता था। दुनिया मे अपनों को पराये होते देख दुख का वारापार नहीं रहा, केदार भैया ! मेरी सामथ्य कुछ भी न सह सकने की सीमा तक आ गई। उस हालत में मैं नारी का अपने व्यक्तित्व पर विजय पाते न देख सका – एक पत्नी को तो बिल्कुल ही नहीं। मैं मानता हू कि मैंने घर की चीजें बेच फूकीं मगर उससे प्राप्त पैसे को मैंने उठाया नही केदार बाबू बल्कि अपने आश्रितों की उनसे सहायता की। मैंने विवश होकर नारी पर हाथ उठाया था, भैया ! छाया ने मुझे मेरे पैसे चुका कर वह नीच काम करने पर मजबूर कर दिया। अब मैं दुखी हू कारण मेरा आवेग ठडा पड गया है। वह भी

अपनी आत्ममयी अवस्था में, जो कुछ कर रहा हूँ उसके लिए पश्चात्ताप करेगी।'

"तुमने जो कुछ किया उसके लिए तुम्हें दुख है किशन ?'

'हाँ।'

'मेरी बात मानोगे ?'

'कहो।

'पाप कबूल दो।'

'नहीं।

'कारण ?

'मैं दाया के आगे नहीं झुक सकूँगा। किसी के निशान पर तो बिल्कुल नहीं।

'तुम नहीं समझते कि तुमने गलती की ?

मैं जानता हूँ कि मैंने पाप किया।'

'फिर ?

'एक समय ऐसा भी होता है जब इन्सान को अपना पाप भी अच्छा लगता है बदार बाबू मैं असत्य और पाप के सहारे ही आज जीवित हूँ।"

'और पाप को पाप समझ लेने के बाद भी उसका प्रायश्चित्त करना नहीं चाहते ?'

'ऐसी ही बात है।'

इसके बाद एक क्षण चुप रह कर वह फिर बोल उठा, परिस्थितियों से त्रस्त पति की इतनी सी उद्विग्नता भी पत्नी के लिए क्षम्य नहीं है

केदार बाबू ? इतना महगा अपनापन परिस्थितियों की ठोकर से क्या इतना सस्ता हो चलना चाहिए ? दुनिया म हमारे सिवाय और पति पत्नी क्या ऐसे नही हुए जिनके जीवन म हमारे से भी भयकर दुघटनाए गुजरी हो और फिर भी व यथावत् पति पत्नी ही बन रहे। आखिर उस क्षमा साहस और सेवा की मूर्ति को तो इस कदर उच्छृखल नही हो जाना चाहिए था।

किरण की वाणी म इस समय गाभीय और उसके चहरे के भावो मे स्थिरता थी। उसकी भावमुद्रा स यह स्पष्ट था कि वह जो कुछ भी कह रहा है, अपनी विचारधारा के एक निश्चय के आधार पर कह रहा है। किरण की जीवन कहानी सुन लने के बाद केदार के हृदय म उसके प्रति सहानुभूति का एक अक्षय स्रोत उमड पडा। उसने किरण को धैय देते हुये कहा तुम पुरुष हो किरण ! तुम्हें परिस्थितियों से पीछे नहा हटना चाहिये। छाया न गल्ती की कि तुम्हे समझा नही। तुमने गल्ती की कि उसे अपना समझकर भी उसके साथ गैर का सा बर्ताव रखा। खैर ! मेरे प्रयत्न को तुम विफल न करना। मैं उसे मना लूगा।'

इतना कह केदार वहा से उठ खडा हुआ। कमरे से निकलते हुये उसने किरण की आवाज सुनी। वह कह रहा था—'तुमने पुस्तकें पढी हैं केदार बाबू ससार को नहीं पढा, औरत को तो बिल्कुल नहीं। वह अपनी स्थिति म आ जाने के बाद दुनिया की किसी हस्ती को कुछ नही समझती।

परन्तु केदार कमरे से निकल ही गया। वह अपने ध्येय म इतना व्यस्त था कि उसे किरण की बात पर ध्यान देने की फुरसत ही नही थी। इस कमरे से निकल कर वह सीधा वहा गया जहा छाया शून्य म दृष्टि आरोपित किए बटी थी। केदार को देखते ही बोली—"चले गये?'

नही।"

क्या ?"

मैंने उन्ह रोक लिया है।'

किसलिए ?

किरण दया का पात्र है छाया देवी ! आपने उसे समझा नहीं। परिस्थिति ने उसे यह सब कुछ करने पर मजबूर कर दिया था।"

आप चाहते क्या हैं ?

'उसे माफ कर दीजिये।'

जानते हैं कितनी बार मैंने उसके इस अन्याय को सहन किया है ? मेरे मन में अब यह सब कुछ सहने की शक्ति नहीं बची। मुझे अब कुछ नहीं चाहिए केदार बाबू ! मैं शान्ति चाहती हूँ।'

पुरुष नारी के लिए आश्रय स्वरूप है छायादेवी ! उस आवेश में आश्रयहीन नहीं हो जाना चाहिए।

मुझे आश्रय नहीं चाहिये केदार बाबू ! मैं आश्रित हूँ भी नहीं। यदि आश्रय की कभी आवश्यकता हुई भी तो मैं जानती हूँ कि मेरे आँसू मेरी मदद कर लेंगे।'

दो एक क्षण रुककर वह फिर बोल उठी आप यदि किसी तरह की भीरुता महसूस करते हैं तो मुझे यहाँ रहने की जिद नहीं है केदार बाबू।' इतना कह अपनी साड़ी के छोर से वह अपने आँसुओं को पोंछने लगी। केदार को कुछ कहते न सूझा। वह कुछ क्षण मौन मूर्ति हो वहीं बैठा रहा। इस समय उसके चेहरे पर उदासीनता की गहरी रेखाएं सी अंकित हुई थीं। कुछ देर तक अपनी इस विचारमुद्रा में स्थित रहकर उसने फिर कहा—'मेरी प्रार्थना पर तो फिर ध्यान नहीं दिया !

मेरी सहायता के सवाल का आपका यही उत्तर है केदार बाबू ?

'नहीं छाया देवी ! परन्तु मुझे प्रार्थना का तो अधिकार है।

आपके लिये यही योग्य था मैं मानती हूँ। परन्तु मैं मजबूर हूँ केदार बाबू ! मुझे और मजबूर मत बनाइये। वह फिर आँसू बहाने लगी। मालूम होता था, कि रह रह कर उसे जीवन की उन विशेष विशेष घटनाओं की याद आने लगी है जिनमें किरण का अन्यायपूर्ण व्यवहार उसके लिये असह्य रहा था।

केदार आखिर असफल हो उठ खड़ा हुआ। वह नहीं चाहता था कि उसका प्रयत्न असफल हो और किरण उसके घर से निराश लौटे, परन्तु छाया को अपने रास्ते पर लाने की भी उसकी सामर्थ्य नहीं थी। किरण के आगे अपनी इस असफलता को किस तरह बयान करे यही उसकी इस समय समस्या थी। कमरे मे पहुच कर उसने नजर उठाई तो देखा कि किरण वहा नहीं है। मेज पर पड़े कागज के एक टुकड़े पर आखिर उसकी दृष्टि पड़ी। बढ कर उसने उसे उठा लिया। पढ़ने लगा तो आखें उसके अक्षरो पर से एकाएक हटी नहीं। कई क्षण तक बराबर अपनी दृष्टि उन पर आरोपित किए रहा। आखिर उसके पाव वापिस कमरे के द्वार की ओर बढ़े। कागज के इस टुकड़े को अपने हाथ मे थामे वह छाया के पास आया। यहा आकर एक बार और उसने इसे अपनी आखो के आगे किया और फिर शान्त भाव से छाया के आगे मेज पर रख दिया। छाया ने मेज पर पड़े ही उसे पढ़ा और फिर उसी क्षण अपनी दृष्टि उस पर से हटा ली।

दो एक क्षण दोनो चुप रहे। केदार से इस अवसर पर अधिक देर तक चुप रहते न बना। उसने कहा—'किरण स्वाभिमानी पुरुष है, छाया देवी! उसकी विलक्षणता उसकी परिस्थितियो को देखते हुए सराहनीय है। ससार मे बहुत कम पुरुष उसकी परिस्थितियो मे पल कर उसके समान योग्य हो सकते हैं।"

'वह सहानुभूति का ही पात्र है केदार बाबू! सम्पर्क का बिल्कुल नही!'

छाया के शब्दों मे उसके रोष व घृणा की ज्वाला स्पष्ट थी। सुन कर केदार के मुह से निकला 'खैर।" और वह चुप हो गया। छाया इस शब्द का मतलब समझती थी। थोड़ी देर दोनों ही चुप रहे। आखिर छाया ने पूछा—

'अब कहां है?'

चला गया।' एक क्षण रुक कर उसने छाया की ओर देखा और बोला— अब 'नायन' नही आयगा। निरा गया है— 'किरण दया का जीव नही स्पर्धा का प्राणी है। उसे आश्रय नही चाहिए। अपना म अपनापन लाज उसने अपनापन खो दिया था। और अधिक गिरना वह नही चाहता। यह उस पत्र की भाषा थी। छाया सुन कर शान्त रही। उसने कोई उत्तर देना नही चाहा। केदार दो एक क्षण छाया की उपस्थिति म रहने के बाद कमरे के बाहर चला गया। घटना की इस मंजिल पर उस कसी वचनी थी। यह तो वही जाने।

केदार के कमरे से बाहर चले जाने के बाद छाया काफी देर तक यथावत् अपनी जगह पर बठी रही। इस समय उसके चेहरे पर गंभीरता के स्थिर भाव मुद्रित थे। आखें शून्य म आरोपित थी और, ऐसा मालूम होता था कि वह किसी गहरी विचारधारा म डूबी हुई है। इस समय हो सकता है कि उसके अतीत के दृश्य सजग हो उठे हों और क्रमश कहानी बन कर उसके स्मृतिपट पर आ उपस्थित हुए हो। यह भी संभव है कि भविष्य की भावी जीवनी पर उसकी विचारधारा बह निकली हो और उसी म मग्न वह मूर्ति बनी इतनी देर तक बठी रह गई हो।

कई देर तक खोई हुई सी इस तरह बठी रहने के बाद वह उठी और फिर कमरे म इधर उधर किसी चीज की तलाश करने लगी। थोड़ी देर की खोज के बाद उसे अपनी खोज की वह वस्तु मिल गई। आश्चर्य! यह वही टूटी हुई पुरानी चूड़ी थी जिसे थोड़ी देर पहले इसने सुहाग की लाश कह कर अपने हाथ से तोड़ फेंका था।। झुक कर उसने उसे उन्ही हाथो से उठा लिया। न जाने करीब दो साल की पुरानी इस टूटी चूड़ी मे इस समय कौन सा आकर्षण आ गया था जो वह इसे इतने गौर से देखने लगी। उसकी आखो म इस अवसर पर आसू छलक आए और उससे अपने पर अधिकार रखते न बना। बहुत संभव है कि इस अवसर पर उसे

अपने विवाह की किसी घटना की याद हो आई हो और अतीत का वह हृदय जाग खड़ा हुआ हो जब किरण ने अपने हाथ से इस चूड़ी का शृंगार किया हो उसकी उस सुखमयी कहानी का यह दुखमय अन्त उससे एकबारगी देखते न बना और आंसू धारा बन कर उसकी आंखों से बह निकले। उसकी भावुकता ने इस समय दूसरा रूप धारण कर लिया था और उसकी वह पुरानी विचारधारा इस नई धारा में परिवर्तित हो चली थी। अपने इस नए आवेश में छाया ने सौभाग्य की इस भग्न प्रतीका को फिर एक बार अपने आंचल में बांध लिया और पूर्ववत पलंग पर बैठ गई।

इसके करीब आध घंटे बाद केदार कमरे में आया। छाया मौन मूर्ति बनी वहां बैठी थी। केदार ने अनुभव किया कि छाया को अपने किए पर दुःख है। परन्तु बीती हुई बात को इसी समय फिर चलाना उसने उचित न समझा। बोला— 'भोजन की क्या व्यवस्था होगी ?"

'कौन करेगा ?'

"किसी को बुला लिया जायगा।"

'उसकी जरूरत नहीं। मैं खुद कर लूंगी।"

इतना कह वह अपनी जगह से उठ खड़ी हुई। रामू को उसने आग जलाने व रसोई का सामान ठीक करने के लिए कहा। छाया सिर्फ डाक्टरनी ही नहीं बल्कि एक चतुर गृहिणी भी थी। देखते देखते उसने अपने आपको इस नए घर में नए काम के लिए तयार कर लिया। केदार ने उसकी इस दक्षता को देखकर अनुभव किया कि, परिस्थिति को परखने व उसी के अनुकूल अपने को बनाने में वह पारङ्गत है। रामू ने आग जलाकर रसोई का सामान ठीक किया तब तक वह अपने और कामों से निवृत्त हो रसोईघर में पहुंच गई। वहां पहुंचकर रामू के हाथ उसने अस्पताल अपनी छुट्टी की दरख्वास्त के साथ भेज दिया और स्वयं घर के काम

तग गई । इस समय उसके हृदय म क्या-क्या हो रहा था यह तो वही जाने परन्तु इतना सत्य है कि उसकी बाहरी क्रियाओं स कोई नया आदमी यह अनुमान तक नही कर सकता था कि किसी नई जीवन-परिस्थिति म स वह गुजर रही है ।

: ४ :

किरण का क्या हुआ, वह कहा गया कहा रहा कुछ पता नही। दूसरे दिन आशा न वक की पास बुक और चैक बुक लाकर छाया को दी और कहा— बाबू तो नौकरी पर चले गय हैं।'

'अच्छी बात है।' —छाया ने कहा। कसी नौकरी होगी जिसके लिए किरण घर छोड कर चला गया है यह उसने मन ही मन अनुमान कर लिया। थोडी देर बाद उसन आशा को आज्ञा दी कि वह घर से उसके कपडों व दवाइयो के बक्स ले आवे।

देखा पास बुक उसी के नाम की है और उसम कल ही पाच हजार रुपये जमा कराये हैं। नमूने के हस्ताक्षरों के लिए उसमें कार्ड भी रखा है। पास बुक पर छाया का परिचय श्रीमती किरण के नाम से नही वरन् पुत्री सरोजनी शर्मा के नाम स दिया है। छाया के हृदय को उसने कचोट लिया। वह अपन पलको के आसू थाम न सकी।

काफी दिन चढ आया। केदार बाबू लौट कर आ ही रहे होंगे और फिर उ हें कचहरी जाना होगा। छाया रसोई बनाने की तयारी म लग गई। उसका उद्वेग शान्त हो गया।

छाया की पाक दक्षता की प्रशसा करते हुए केदार ने भोजन किया। पास बैठी छाया पखे की हवा करती हुई अपनी प्रशसा सुन रही थी। बोली— आप भर पेट खा सकें इतने म ही मेरी विद्या साथक हुई मानूगी।'

इसी समय खबर मिली कि कदार का बाल्यम घु केशव आ रहा है। केशव आ रहा है यह समाचार सुन कर ही कदार के चहर पर आनन्द की रेखा खिच गई। वह बोला— छाया देवी केशव म आप देवना क दशन करेंगी। अधिक प्रशसा मैं क्या करू ? केशव मेरे यहा ही आकर ठहरेंगे सपत्नीक। आदश व्यक्तित्व है केशव, छाया देवी!

'पहले खाना तो समाप्त कर लीजिए।' हस कर पखा झलते हुए छाया ने कहा।

'खाना तो खाते ही रहेंगे।'

'तो क्या करना होगा आपके केशव के लिए?'

उनके रहने के लिए एक बडा कमरा ठीक ठाक करना होगा। नई भाभी के स थ वह आ रहा है। उ हे एसा न लगना चाहिए कि एक खानाबदोश क यहा आ उतरे हैं।

'आपको कचहरी तो नही जाना होगा न ?'

"कसे जा सकू गा। अपने सहयोगी को खबर भिजवाये देता हू। वह काय सम्भाल लेगा।

केदार ने रामू को बुलाया। कौन सा कमरा सजाना है। कसे क्या करना है, आदि बातें उसे समझाने लगा। फिर छाया से बोला—आपकी सुरुचि और सहायता की भी जरूरत होगी।

रामू को साथ लेकर वह घर के दूसरे भाग की ओर चला गया। छाया उसकी व्यग्रता और लगन पर मन ही मन चकित होती रही।

भोजन समाप्त कर जब छाया ने केदार की खोज की तो वह धूल मे सिर से पर तक भरा भराया कमरे से बाहर आया। उसे देख छाया अपनी हसी को न रोक सकी। इस पर केदार न लज्जित हुए बिना ही

कहा—'छाया देवी इस काम को मैं किसी के भरोसे नहीं छोड सकता था।"

छाया ने मुस्कराते हुए कहा— फिर रामू को इतनी हिदायतें देने म समय नष्ट क्यो किया आपने ?'

"यह आप नही समझती, छाया देवी ! आज शाम तक जिस रूप मे मैं इसे देखना चाहता था वसा हिदायतो के बावजूद भी शायद रामू नही कर पाता।'

'खैर तो मुझे क्या करना होगा ?"

'अब तो सारा आप ही का काम है। आप इधर आ जाइये, मुझे और रामू को बताती जाइये कि कौन-सी चीज कहा शोभा पायगी ?"

छाया हस दी। केदार ने भी उसकी हसी मे योग दिया।

छाया की कलामयी रुचि ने शीघ्र ही उस कक्ष को सवार दिया। हर चीज अपनी जगह पडी हुई सुन्दर लगने लगी। कमरे के रग से मेल खाती हुई चीज ही छाया ने अपनी सजावट म पसन्द की थी। कई तस्वीरो को उसने अनावश्यक कह कर सजावट म लेने से इन्कार कर दिया। पलग पोश मेज पोश पर्दे सब उसने बदल डाले। बत्तिया व उनके शेड तक उसने बदल दिए। केदार मन ही मन छाया की सुरुचि पर मुग्ध हो रहा था। सजावट की समाप्ति के बाद जब वह 'ड्रेसिंग टेबल' के सामने बैठा तो उसने हसकर कहा—'सच कहना छाया देवी, इस कक्ष म मैं कैसा मननुरूप दिखाई पडता हूँ।'

छाया मुस्करा दी ! बोली—"इस तरह काम न चलेगा। सारे घर की ऐसी ही व्यवस्था करनी होगी।"

'मेरे रहने लायक एक भी कक्ष नहीं रहने देंगी आप ?"

'नहीं —छाया ने गंभीरता से उत्तर दिया। इसके बाद एक सोफे पर बैठ कर उसने एक कागज पर आवश्यक सामान की सूची बनाई। रामू को अपने घर से सामान ले आने के लिए भेज दिया। कुछ चीजें बाजार से भी मंगाई।

केदार बाजार से सामान लेकर लौटा तो उसने देखा कि घर के दूसरे कमरे भी छाया के हाथों एक नया रूप पा गए हैं। कमरों के आगे के बरामदे की दुनिया ही अब बदली हुई थी। संसार के अमर पुरुषों के भावमय कला चित्र उसके मुख्य स्थानों में सज रहे थे जिसके आगे नतमस्तक हुए बिना इस बरामदे को पार करना मानव की भावुकता कला शिक्षा आदि पर एक लांछन था। केदार ने वहां सजे हर चित्र को गौर से देखा और अपने हृदय मस्तिष्क और आंखों की प्यास बुझाई।

संध्या के बाद घना अंधेरा होने पर फिर एक बार उसने इस सजावट के सौंदर्य की जांच की और तब कहीं जाकर उसे संतोष मिला।

प्रातःकाल तड़के उठकर केदार तैयार हो गया। जब छाया उसके सामने पहुंची तो वह बोला— कल मेहनत अधिक की इसलिए उठने में देरी हो गई ?

नहीं तो मेरे उठने का यही समय है।' उसने अंग मोड़ते हुए कहा। आज तो आप जल्दी तैयार हो गए !

यह तो निश्चित था। नींद भी कहां आई !"

इन्तजार में यही होता है।'

केदार अपने मित्र के स्वागत के लिए स्टेशन रवाना हो गया। उसे भरोसा था कि छाया के रहते घर की चिंता के लिए उसे व्यग्र होने की आवश्यकता नहीं।

: ९ :

केशव ने गाडी से उतरते ही स्वागत को आये अपने संबंधी से पूछा—'केदार नहीं दिखाई दे रहा ?"

नहीं दिखाई दिए। उत्तर मिला।

अपनी धर्मपत्नी से भी मालूम पडता है केशव ने अपने सुहृद बंधु केदार की चर्चा चलाई थी। वे भी अपने स्वामी के मित्र से मिलने की उत्सुकता लिए थी। उन्होंने भी इधर उधर देख कर प्रश्न किया—'नहीं आये न आपके मित्र ?"

"शायद, नहीं आये।' कहकर केशव अपनी पत्नी और संबंधी के साथ प्लेटफार्म से बाहर आये। उन्हें केदार के न पहुंचने पर कुछ अचरज जरूर हो रहा था। इसलिए जब उनके संबंधी कार ड्राइव करके चल तो उन्होंने पूछा—"शायद केदार को हमारे पहुँचने की खबर न हो।

'खबर तो जरूर है। उन्हें खुद मैं कह कर आया था।"'

'तो आप सीधे वहीं चलिए।'

वहीं चलू ?'

'क्यों, कोई आपत्ति है ?"

'आपत्ति नहीं शायद आपको वहां पसन्द न आ सके।...

"पसन्द क्या न आयगा। आप चलिए तो सही।"

केदार स्टेशन पर अपने मित्र को खोजता रहा। इधर केशव सपत्नीक उसके घर पहुचा। देखा विशिष्ट सजावट से मित्र का निवास स्थान उनका स्वागत करने को प्रस्तुत है। वह कार से उतरकर सीधा भीतर चला गया। कमरे के बाहर छाया अपने केश सुखा रही थी उस पर दृष्टि पडते ही वह चौंककर लौट पडा। अपने साथी से पूछा—'यह स्त्री कौन है ?'

आपने देख लिया उसे ? केदार—बाबू की आश्रिता है वह।'

इस कहने म कुछ ऐसा लग रहा था जसे वह कुछ और कहना चाह रहा हो। केशव ने कहा— कदार ने मुझे तो कभी आभास भी नही दिया। मैं समझता था वह अकेला ही है।'

जी नही। मैंने पहले ही आपसे सकेत किया था कि वहा आपका ठहरना ठीक न होगा।"

'खर अब सही। चलो जल्द।

पुन सब कार म बठ गये और दूसरे ही क्षण कार सडक पर दौडी जा रही थी।

छाया ने चाहा नौकर को दौडाकर उन्ह रोके और वह गया भी पर वे न रुके। चले गये। छाया को लगा जसे इस अनहोनी घटना म उसी का सारा दोष है। वह उदास भाव से एक कुर्सी पर बठ गई। देर तक एक विचारधारा उसे बहाती रही और वह तन्द्रा तभी भग हुई जब कदार लौट आया और पूछा— कशव आये तो नहीं ?'

अपराधिनी की भाति छाया ने उत्तर दिया— आये थे पर चले गय। शायद मेरे कारण। वह अन्यमनस्क और उदास थी।

आये थे पर चले गए ! तुम्हारे कारण ! क्यो भला ? क्या उसे

विपथगामी

मेरे पर विश्वास नही ?' दुख और विस्मय से वह आहत सा हो गया था।
मर्माहत।

'यह तो मैं क्या बताऊ ? एक अपमानित की ग्लानि और रोष उसके चेहरे पर थे। केदार से उसकी स्थिति और अभिव्यक्ति छिपी नही रही।

केदार ने रामू से पूछा। वह भी कुछ उत्तर नही दे सका। इतना ही मालूम हुआ कि केशव अपनी पत्नी सहित आए थे, पर ठहरे नही चल गए। केदार तुरंत ही अपने मित्र के इस आचरण के लिए उस उलाहना देने उसकी ससुराल को चल दिया।

केशव से भेंट हुई। केदार ने शिकायत की— वाह, केशव भैया, स्टेशन पर भी नहीं मिले और घर पर भी नही ठहरे।

केशव ने उसकी ओर अर्थभरी दृष्टि से देखा। उत्तर कुछ नहीं दिया। रोष और अविश्वास उसकी दृष्टि को विषम और विकृत किए हुये थे।

'सुना नही, केशव भैया ? केदार ने उच्च स्वर मे कहा।

'सब सुन चुका हू।"

"लौट क्या आए ?"

'मैं वहा रह सकता था ? शायद, अपने पथ अलग अलग हैं।' उसने केदार की आखों म देखा। पुन शब्द निकले—'मैं आदर्शवादी हू, केदार। नतिकता का पुजारी हू।'

फिर आपत्ति क्या थी ?"

'अपनी आपत्ति मैं स्वय देख आया, केदार। उसने अपनी दृष्टि केदार पर से हटा ली। बोला—'मेरा विश्वास, प्यार, सम्मान सब कुछ तुम खो बठे। आज मैं गर्वहीन हू। सब के सामने नतमस्तक हू। खर।"

केदार ने केशव की इस 'स्वर' में अपनेपन का अभाव लगा। उसने महसूस किया कि उसके साथ आँख-मिचौनी हो रही है। अपने सुहृद का यह व्यवहार उसके लिए असह्य था। वह बोला—'फिर मैंने तुम्हारे आने की खुशियाँ यों ही मनाई ?

'इसका उत्तर अपने हृदय से पूछो।

और तुमसे क्यों नहीं ?

'इसलिए कि मुझे कहते शर्म लगेगी। तुम्हें सुनते शायद न लगे।' केशव की सारी घृणा शब्दों के साथ बाहर निकल पड़ी।

केशव भैया ! केदार आघात खाये हुए प्राणी की तरह चौंक उठा वह आगे कुछ कहना चाहता था, मगर उसने सुना — 'फिर कहता है कि अपने पथ अलग २ है केदारबाबू ! मैं आदर्शवादी हूँ। जीवनभर वही रहना चाहता हूँ। तुमने मेरा पथ छोड़ मुझे ठुकरा दिया। कलकत्ते आने पर मुझे यह पहली और आखिरी भयंकर चोट लगी है। इससे अधिक कष्ट तो मुझे कैसी भी दुर्घटना नहीं पहुँचा सकती थी।' इतना कह उसने कमरे में आती हुई किसी रमणी को हाथ के संकेत द्वारा दूर से ही वापिस लौटा दिया। केदार ने गर्दन घुमाकर उधर देखा तो साड़ी का लहराता हुआ एक छोर भर दिखाई दिया। उसके विचार से उस जैसे आत्मीय के लिये अपमान की यह आखिरी सीमा थी। आज ही यह आवरण क्यों ? क्या केशव उसे इतना पतित समझने लगा है ? उसका स्वाभिमान जाग उठा और अधिक ठहरने की उसकी चाह न रही। एक क्षण भी और रुकना उसके व्यक्तित्व की हत्या थी। उसी मुद्रा में वह उठ खड़ा हुआ और तीर की तरह नतमस्तक हुआ द्वार से बाहर निकल गया।

• ६ •

किरण अब दिल्ली म है। उसको कलकत्ता छोडे आज पूरे बीस दिन बीत गय थे और घर छोड शायद महीना। अभी कोई टिकाना नही लगा था। वही खानावदोशी की हालत थी। दो धर्मशालाओ के सप्ताह निवास का यहा आकर वह फायदा उठा चुका था। यह तीसरी धर्मशाला थी जिसमे उसका इस समय डेरा था। दिन मे इधर उधर घूम आता था। थक जान पर यहा आकर पड रहता था। किसी तरह के काम का सिलसिला अभी तक नहीं बैठा था।

इस समय दिन के बारह बजे थे। किरण अपनी धर्मशाला की कोठरी मे चारपाई पर पडा छत की कडिया गिन रहा था। कई देर उसे यों पडे हुये बीत गई थी परन्तु अभी तक उससे उन दो तीन कडियां की गिनती शेष न हो पाई थी। वह बराबर उन्ही की ओर दृष्टि लगाये देख रहा था कि एकाएक उसे शायद किसी खास काम की याद हो आई। वह छटपटाकर एकदम उठ बठा। अपने आवेग म इस समय एक बार उसकी आंखें बन्द हो गई और हिले हुये सर पर सहज ही उसके दोनो हाथ जा पहुचे। चारपाई से उठकर उसने अपना सूटकेश खोला और उसमे से कुछ कागजात निकाले। य पोस्ट आफिस से प्राप्त मनिआडर की कुछ रसीदें थी। उसके बूढ़े चाचा और विधवा बहिन फिर मनीऑडर की प्रतीक्षा कर रहे होगे। एक भयकर वेचनी से किरण कराह उठा।

अपने दुख के आवेग में वह उठ बैठा। झट से कपडे पहिने और ताला लगाकर धर्मशाला से बाहर चला आया।

बाहर की ठंडी हवा लगने पर वह आवेग न रहा। निराशा ने उसके शरीर और मन पर अधिकार कर लिया। उन्हें शांति पहुँचाने क इरादे से वह पास क एक पार्क म जा बैठा। उसे वहा बैठ अधिक देर न हुई थी कि एक युवक और एक युवती भी आकर उसस थोडे ही अन्तर पर बैठ गये। उनके पीछे चार पाच मनचले युवकों का दल भी आकर बैठ गया।

किरण ने लक्ष्य किया कि युवक मण्डली म शरारत और चुहल बाजी शुरू हुई और उसका लक्ष्य थी वह युवती जो नीची निगाह किये अपने साथी के साथ बातचीत म रत थी। शरारतें बढती गई और युवती सकोच और लज्जा स सिकुडती सी दिखाई दी। उसका साथी अपमान और रोष से आकुल पर सभ्य गुण्डे क्यो मानने लगे। उनकी छेडछाड किरण को असह्य हो उठी।

उनके उपद्रव सीमा से आगे बढ जाने पर युवक ने अपनी सहचरी को उठाया और चल पडा। उस पर युवक मण्डली म से एक ने अपने साथी के गले का हार तोडकर फूल उनके मार्ग मे बिखेर दिये और सब खिल खिलाकर हस पडे। युवक और युवती ने घृणा से उनकी इस हरकत को देखा पर वे क्या कर सकते थ। किरण भीतर ही भीतर उबल रहा था। उसने देखा कि इस पर भी वे दोनो अपमान को पीकर चले जा रहे थे तो एक ने युवती की पीठ पर मुट्ठी भर फूल फेंक मारे।

युवक और युवती दोनो ने घूमकर पहले अपने पीछे जमीन पर और फिर उस मण्डली की ओर देखा। तो उधर एक नई घटना घट रही थी। बेन्च पर बैठा हुआ वह शान्त सा युवक लातो मुक्कों की मार से उस वाचाल समूह को तितर बितर कर रहा था। उन्होने देखा कि उनमे स दो एक तो जमीन पर से उठने व कुछ भी कर सकने के लायक नही रह गए थ। अपने दोनो हाथो स अपने नाक मुह को दबाए

वे दयनीय अवस्था में अपनी उस रङ्गभूमि के एक ओर लुढके पड़े थे। बाकी तीन में भी इस आक्रमणकारी से बदला लेने की शक्ति व हिम्मत नहीं मालूम हो रही थी। स्पष्ट किरण उन्हें धुन रहा था और 'बदमाश' 'बदतमीज' 'नालायक' आदि नामों से पुकारता जा रहा था।

बात की बात में आसपास के लोग वहां इकट्ठे होने लगे। ऐसे अवसरों पर अनेकों की आदत के अनुसार वे बात का निष्कर्ष निकालने की अधिक कोशिश करने लगे। पास पहुंच कर 'क्या बात है? क्या हुआ?' आदि प्रश्नों की झड़ियां बंध गईं। किरण के पास इन प्रश्नों का जवाब उक्त रोष भरी गालियों में फूटा पड़ रहा था। पिटनेवालों के मुंह बंद थे। वे अपनी शारीरिक असमर्थता के कारण अपमान के गुस्से को पीते हुए मालूम हो रहे थे। बीच बचाव करने के लिए आये हुए लोगों के प्रश्नों का उनके पास उत्तर नहीं था। थोड़ी ही देर में आगन्तुकों ने उन्हें वहां से खिसकते देखा। जाते जाते उनमें से एक दो किरण को शीघ्र समझ लेने की धमकी देते गये।

इन सफेदपोशों के खिसक कर चले जाने के बाद किरण की प्रतिक्रिया का उफान कुछ उतर गया। वह वापिस अपनी बेंच पर जा बैठा। इधर उधर से इकट्ठे हुए लोग भी दो एक मिनट टिप्पणी कर अपने अपने रास्ते चल दिये। वह युवक और युवती जिनको लेकर इस घटना की शुरुआत हुई थी शायद बहुत पहले ही चल दिये थे। किरण ने इधर उधर देखा भी मगर दूर तक उसे उनका कोई पता न चला। उसे तुरंत ही हंसी आ गई। अपने सामने के शून्य में विचार-मग्न हो वह देखने लगा।

क्या सोचा, क्या देखा, यह तो वही जाने परन्तु इतना सच है कि घटना की इस मंजिल पर घटना के संबंध के परे की विचारधारा

उसके मस्तिष्क मे इस समय नही आ सकती थी। किरण की मनोदशा पर विचार कर कोई भी यह अन्दाजा लगाने मे शायद भूल नही करेगा कि उसने इस अवसर पर जो कुछ सोचा वह धनवान और उसके धन के विषय मे ही सोचा। साथ ही यह विचार भी उसके मस्तिष्क मे आए बिना न रहा होगा कि साधारण पुरुष सिद्धान्तहीन धनिको के सस्कारो के शिकार हो उन्ही की तरह कायर क्यो बनते है?

अधिक देर तक किरण से वहा बैठते न बना। ज्योही उसकी विचारधारा टूटी वह उठ खडा हुआ। कहा जाय? एक ही जगह तो थी। वह धर्मशाला की कोठरी जहा से थोडी देर पहले वह घबडा कर उठ आया था। वही वापिस पहुचने की उसने सोची। अब वह जगह उसे शायद उतनी भयावनी नही मालूम होती था।

अपनी कोठरी मे आकर दरवाजा बन्द कर किरण सो रहा। शायद थक गया था। शरीर की थकावट से मस्तिष्क की थकावट अधिक असर करती है। उसे जल्दी ही नीद आ गई।

उसे सोए अभी अधिक देर नही हुई थी कि द्वार पर लगातार होती हुई भडभडाहट ने उसे जगा दिया। उठकर देखा तो उसी की कोठरी के द्वार को कोई बाहर से धक्के मार रहा है।

उठकर उसने द्वार खोल दिए। पूछा— क्या है?

सब मालूम हो जायगा।' आवाज पुलिस की वर्दी मे लैस एक सिपाही की थी।'

"यही है वह?' प्रश्न पुलिस के प्रहरी का अपने सग आए एक नागरिक से था।

"जी।"

'क्या बात है?' प्रश्न किरण का था।

"अभी तक तो कुछ नहीं।"

'फिर ?"

'हम तलाशी लेना चाहते हैं।"

'किसकी ?

"और किसकी।"

'मगर क्यों ? किरण का चेहरा साथ ही रोष से तमतमा गया। सामने भी लाल पगडी वाला जवान था। सहने की गुंजाइश यहा कहा थी ? वह कर बोला—'क्यो और किसकी के बच्चे ! चोरी और सीनाजोरी ! बाहर आ। और साथ ही बाँह पकड उसने किरण को कोठरी के बाहर खींच लिया। किरण के बाहर आते ही इस सरकारी प्रहरी के साथी कोठरी के द्वार पर आ गए और इधर उधर, भीतर देखने लगे।

अब तक धर्मशाला के दरवान ने चौक में चारपाई डाल दी थी। बात की बात में बहुत से मुसाफिर व दर्शक इकट्ठे हो गए। पुलिस दल का मुखिया थानेदार चारपाई पर बैठ गया। किरण अब सामने खड़ा था। प्रश्न हुआ—'कहा है वह जंजीर और घडी ?"

'कौनसी जंजीर व घडी ?

'जो आज बाग म से कमा कर लौटे हो।'

मेरे पास कोई घडी व जंजीर नही है।

'कहा है वह रपट देहन्दा ?

फिर प्रश्न हुआ—'पहचानने मे तो गलती नही करते ?"

"जी नहीं।'

किरण ने इस पुरुष की ओर गौर से देखा और बोला—मैं भी

इस पहचानता हू ।'

पहचानना ही चाहिए । आपका नाम ?

मेरा नाम है, किरण ।'

फिर हम अपना फर्ज अदा करना चाहिए, किरण बाबू ! यह कहते हुए वह मुखिया उठ बठा । किरण के कपडा व उसकी बातचीत के रगढग न उसे इस अवसर पर पुलिस के अन्य अपमानो से अवश्य बचा लिया । सभव है स्वय थानदार न किन्हीं कारणो से यह रिआयत किरण पर कर दी हो ।

इन धनवानों के हाथो हर पाप सभव है, थानेदार साहब ! मैं बिल्कुल निर्दोष हू । घटना चोरी की नहीं है । किसी की मान रक्षा की है । सभ्रान्त परिवार को अपमान से बचाने की है ।' आवाज किरण की थी । मगर किसी ने ध्यान नहीं दिया । कोठरी ज्यों की त्यों चौपट थी । अब तक तो कौन जाने क्या क्या हो गया था ।

साथ आए हुए श्रीमन्ता को अपनी तलाशी दे के पुलिस दल ने किरण की कोठरी की तलाशी शुरू की और एक सोने की चेन व घड़ी को उसके तकिये के नीचे से बरामद कर लिया । फिर क्या था ! उसे अपने हाथ मे पकड़ा कर थानेदार साहब कोठरी से बाहर निकल आए ।

एक असमय पुरुष का विवशता का रोष था जो एक दुख भरी कालिमा के छा जाने से निस्तेज-सा मालूम होता था। घबराहट अब भी उसके चेहरे से नहीं झलकती थी बल्कि ऐसा मालूम होता था कि वह अपनी ही मुसीबत में से साहसपूर्वक गुजरने के लिए तैयार है। उक्त लिखा पढ़ी के दौरान में किरण ने दर्शकों की विभिन्न उक्तियां इस घटना के संबंध में सुनी मगर वह बोला एक शब्द भी नहीं। कभी कभी अपनी तेज दृष्टि से वह असंयत वक्ता की ओर देख जरूर लेता था। पुलिस दल ने सारा काम मिनटों में मशीन की तरह समाप्त कर लिया और फिर उसे बांध के अपने साथ थाने ले गए।

: ७ :

पूरे प द्रह दिन तक पुलिस हिरासत की जियारत हासिल करने के बाद किरण का तबादला याय विभाग की एक सफे॰ कोठरी में हो गया। वहा पहुँचते ही एक हवालाती ने आपका स्वागत किया—

श्राइए !"

यह कसी "श्राइए। जान न पहचान और यह स्वागत ! किरण को हल्की सी हमी श्रा गई। यह भी एक दुनिया थी जिसका श्रनुभव श्रभागे किरण का सौभाग्य था। यहा पहुचते पहुँचते ही उसका परिचय पाने के लिए कई एक हवालाती उसके चारो श्रोर श्रा इकटठे हुए। एक ने पूछा— किसमे श्राए बाबू ? मगर उत्तर के पहल ही दूसरे ने बात काट दी बोला— 'श्रबे इतना भी श्र॰॰जा नही लगा सकते ?

'जसे तुमने तो पहचान ही लिया ?'

जरूर !'

तुम मत बोलना बाबू ! श्रच्छा बता एक एक बीडी की रही।'

मत बताना बाबू ! मैं सब कुछ कह दूगा। रही एक एक बीडी की।

मुहूत भर क लिए किरण को ऊपर से नीचे तक देख कर हवालात क इस मनोवज्ञानिक न कहा— चार सौ बीस। सुनते ही किरण का उदास-सा चेहरा खिल उठा।

'क्यों बाबू ? दोना किरण का फसला सुनने क लिए उत्कण्ठित

हा उसके मुह की ओर देखने लगे।'

किरण न कहा—'ठीक है।' मुस्कराहट उसके चेहरे पर दौड गई। इस मनोरजन पर वह मुग्ध था।

"ठीक कहो बाबू।' एक न पूछा। उसे किरण की मुस्कराहट ने शायद शक म डाल दिया था।

ठीक कह दिया। पहले बीडी पेश कर जल्दी निकाल।'

'क्यो बाबू ?' पहल न पूछा।

किरण बोला "बीडी दे दो।' हारने वाले न दूसरे हवालाती के जूते म स एक बीडी निकाल कर सुपुर्द कर दी। बीडी लेकर वह बोला—'तुम्हारा नाम, बाबू ?"

'किरण।'

वाह किरण बाबू! और वह उठ खडा हुआ। साथ ही गारद के एक सिपाही की आवाज सुनाई दी— गफू रामू फीरोज सत्तार! चलो।

किरण न देखा कि उसके पास आए हुए इन चार पुरुषों ने उठ कर लोहे के सीखचो के बाहर अपना अपना एक एक हाथ फैला दिया है कि जिससे उनके हथकडी लगाई जा सके। इसके बाद गारद के सिपाही इन चारो को बाहर निकाल वापिस ताला बन्द कर अदालत की पेशी मे ले गए।

वे वापिस आए तब तक इस कचहरी की हवालात से कही और कूच करने का वक्त हो चुका था। एक बन्द बस आई और इन सब हवालातियो को भर कर इनके निश्चित स्थान पर ले गई।

यह स्थान जेल के अहाते म एक ओर बना हुआ था। किरण ने देखा कि जितने वे बाहर से अभी आये हैं उससे कई गुने और इस

बनाते म बन्द हैं। यह बाहर से देखन नहीं मालूम होता था। उसन अन्दर आते ही अपने को औरों का तरह बना लिया। किरण जस पुरुष क लिए परिस्थिति के मुताबिक व्यवहार कर सकना कतई मुश्किल नही था। पहुंचते ही उसके साथियों न उसके लिए जगह, पानी क सब इतजाम ठीक कर दिए। इस हवालात क पुराने हवालातियों ने किरण के आराम का जिम्मा अपने ऊपर लेकर उसको आश्वासन देने की चेष्टा की। यहां पहुचने पर किरण न अनुभव किया कि इन लोगों का भी अपना एक फर्ज व आदर्श है जिसका व मानवोचित ढग से पालन करते हैं। उसक भावुक हृदय म एकबारगी इस हवालाती सस्कृति क प्रति सहृदयता व सहानुभूति सजग हो उठी और उसन अपने तरीके से उनको धय व हिम्मत देन का निश्चय किया।

सन्ध्या क बाद जब वे बिस्तरों पर पड गय तो उसन सुना कि कोई बुरी तरह से सिसक कर रो रहा है। अन्य साथिया क साथ किरण भी उठ कर गया। उसने रोने वाले साथी को आश्वासन देते हुए कहा—'जग्गो भया क्या बात है? इतने दुखी क्यो हो रहे हो? क्या तुम पुरुष नहीं हो? आफत म ही तो पुरुष की परीक्षा होती है। तुमने जो भी किया हो उसके लिए यह रोने का स्थान नही है।

कुछ किया ही तो नही, भया मैंने —जग्गो न कहा। यदि मैं जानता कि घर म तलवार रखना अपराध है तो बाप दादो क समय की उस निशानी को घर मे न रखता और न यह दिन देखना पडता। खानदान की इज्जत गई। बाल बच्चे कहीं के न रहे!

'तुमने किसी को धोखा तो दिया नहीं किसी का गला काटा नही किसी का हक छीना नही फिर तुम्हें अफसोस किस बात का? रही बाल बच्चो की सो उनकी उनको बनाने वाले को तुमसे अधिक चिन्ता है।

मगर जगा के आसू आश्वासन की इन बातो से रुके नही।
दो-एक सिसकिया भर कर वह फिर बोला—'गाव का मैं पहला
आदमी हू जो हथकडी डालकर यहा लाया गया।'

'इसमे क्या हुआ, जग्गो! तुमने अपराध क्या किया? किसका
अपराध किया? अपराध तो कानून बनाने व उसे लागू करने वालो
का है जिन्होने उसे बनाने व लागू करने से पहले उसे तुम्हे पढने समझने
की शक्ति ही नही दी। इस सूरत म तुम दूध पीते बालक की तरह
निर्दोष हो। तुम देहाती आदमी भला इस बात को क्या जानो—कैसे
जानो कि ... में अमुक कानून अमुक तरह से लागू किया गया है। तिस
पर भी यदि वे तुम्हे अपराधी मानें तो तुम्हें इस तरह दुखी नही होना
चाहिए।"

'हा, किरण बाबू! बिचारे ने गाव और खेत के सिवाय कभी
कुछ देखा ही तो नही होगा और ले आए मुलजिम बना के।'

'चुप हो जाओ जग्गो। दुख के य दिन अभी बीत जायेंगे
पुरुष को दुख से डरना नही चाहिए। इसके बाद फिर कुछ क्षण
की शाति इस हवालात म छा गई। दुखिन हवालाती के आसू धीरे धीरे
बन्द होने लग। यह देख सब लोग अपने अपने स्थान पर वापिस
चल दिए। किरण ने चलते हुए सुना और मैंने भी क्या अपराध
किया, किरण बाबू जो आपने सब कुछ लूट लेने वाले की नाक काट
ली?'

'कुछ भी नही किया, रामू! तुम सब अपराध की मूर्तियां ही
नही हो।' अब तक इन बदमो के प्रति किरण की सहृदयता पूर्ण रूप से
सजग हो उठी थी।

परन्तु फिर भी यहां बन्द कर दी गई'—सत्तार बोल उठा।
किरण के विचार अपनी प्रतिक्रिया के कारण प्रश्न के इस अवसर

पर शब्द बन कर वह निकल । वह बोला यह कानून और उसकी व्यवस्था का दोष है सत्तार ! जिस कानून ने साधारण शारीरिक बल प्रयोग यहा तक कि वाक प्रयोग तक को भी तो जुर्म करार दे दिया परन्तु धन प्रयोग क भीषण अत्याचारो को जो उनके जुर्मों की बुनियाद हैं जिक्र तक नही किया । कहां है कानून ? कहा है याय कहा हैं व सुधारक ? मनुष्य इनसे रक्षा पाए बिना सुखी नहीं हो सकता, सत्तार ! ये सब अन्याय और अत्याचार के अस्त्र शस्त्र हैं ।

'ठीक क ते हो किरण बाबू ! मैं तुम्हारी बात को ठीक समझ रहा हू । आवाज रामू की थी । किरण का आवेश अभी अपनी उफान पर था । वह बोलता गया— हर हवालाती को पहले यह समझना चाहिए रामू कि उसके अपराध की बुनियाद क्या है ? उसने वह कानूनी जुर्म क्यो किया ? उसके वास्तविक विचार से वह जुर्म पाप अपराध कुछ है भी या नही ? यदि है, तो उसे प्रायश्चित करना चाहिए । जरूर करना चाहिए । पर तु यदि नही है तो उसे अपने आपको मुजरिम, अपराधी हेय कुछ भी न समझते हुए उस दुख के समय को अपनी परीक्षा का समय समझना चाहिए । इस तरह की विचारधारा जीवन मे हर समय हर जगह उसे आत्मबल देगी रामू । प्रायश्चित उसके पाप का धो देगा और भविष्य म उसे उस पाप से बचायेगा । आत्मबल का धनी एक दिन व्यवस्था को अपने इतनी अनुकूल बना लेगा रामू कि कानून की काया पलट जायगी और फिर इन्सान को इन्सान पर मजबूर होकर जुल्म करने की जरूरत ही नहीं आयेगी । अपनी अतरात्मा से अपने अपराध का फसला चाहने वाला मानव अपनी गिरी चढी दोनो अवस्थाओ म मानवता से तो नही गिरेगा ।'

'यह सब क्या कह गए किरण भया ? सत्तार ने पूछा ।

यही कि व्यवस्था के दोष से पदा हुई परिस्थितिया यदि मनुष्य के पास सिवाय उनका जुर्म करने के और कोई उपाय न छोडे तो एसी

परिस्थिति म किए हुए उम जुम के लिए इ सान को शमिन्दा नही होना चाहिए सत्तार भया ! ऐसी स्थिति म साहसपूवक यदि मनुष्य ने अपने अधिकार की माग जारी रखी तो समाज उसे एक दिन जुम न कह कर अधिकार कहन लगेगा और फिर व्यवस्था को वह माग पूरी करनी होगी। व्यवस्था के नाजायज जुम को जनता के जायज अधिकार म परिवर्तित करने की शक्ति मानव के त्याग और साहस म है सत्तार, जिसकी शिक्षा दीक्षा इस हवालाती स्कूल में हो शुरू व समाप्त होती है।"

'फिर मैंन भी जुम नही किया किरण भया।"

क्या किया था तुमने ?"

तीन सौ उन्नासी धारा !

सुन कर किरण को हसी आ गई। पूछा—यानी, चोरी।'

'हा

क्यों ?'

'दो दिन के भूखे बाल बच्चा की भूख मिटाने के लिए कुछ करना चोरी है तो मैंन चोरी की।'

'तुमन भी जुम नही किया, भाई। हर व्यवस्था का यह कत्त य है कि वह अपने नागरिक के रोटी कपड़े और स्थान का प्रबन्ध करे। यदि इन तीन बातो के प्रबन्ध म भी वह असफल रहती है तो पहले मुजरिम वह है बाद म कोई और। व्यवस्था की उस राक्षसी अव्यवस्था म जिसम मानव के लिए खाने को अन्न नही तन ढकने को वस्त्र नहीं और रहने के लिए स्थान नही किसी एक मनुष्य को भी सुखी और शान्त रहने का अधिकार नही है। उस मुर्दा व्यवस्था को अपना आपको जिन्दा कहना ही नही चाहिए।' दो एक क्षण रुककर किरण ने इस प्रश्नकर्ता से प्रश्न किया—'परन्तु क्या किया तुमने उस माल का ?

चट कर गया।"

"सब ?"

तुम ठीक कहते हो किरण भया।

पर हम ठीक थी या ठीक मानना भर न किरण भया का काम नही है गगू। तुम मैं रामू फीरोज सतार यगरह जितने भी यहा हैं व दूसरे जो हमारे पडोसी कदी भाइयो की तरह और जगह बन्द हैं सब को मेरे इस सिद्धांत को स्वीकार कर अपना जायज अधिकारो की रक्षा के लिए एक दिन तन कर इस अन्यायपूर्ण तानाशाही के मुकाबले म खडा होना होगा और तब हम वकसो या इन सीखचो के पीछे बन्द कर सुख की नींद सोने वाले उन स्वार्थी आत्मलीन कथित सभ्य समाज व उसकी व्यवस्था को सवाल करेंगे कि उनकी इस दुनिया म हमारे लिए ही पसीना खून व आंसू क्यो हैं ? इस पृथ्वी पर पदा हुई सम्पत्ति को मनमाने ढग से बाट कर भोगने का उन अबलो को ही क्या अधिकार है ? जिस पर यदि उन्होंने हमारी माग को अस्वीकार किया तो हम उन्ही का रखे हुए अस्त्र से काम लेंगे और अपने अधिकारो की प्राप्ति के प्रयत्न म अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे। उस समय पसीना खून व आसुओ से अनभिज्ञ उस सुख म पले स्वार्थी समाज व उसकी व्यवस्था में वह शक्ति नही होगी कि वह हमारी क्रान्ति को दबा कर हम पदलित कर सके गगू। हमारी वतमान परिस्थितिया प्राकृतिक जीवन की स्वाभाविक परिस्थितिया नही हैं और इसलिए अधिक समय तक वे कायम भी नही रह सकती।

गगू चुप था। दूसरे आसपास के हवालाती भी चुप थे। हवालात मे पूर्ण शान्ति छाई हुई थी। किरण अपने स्थान की ओर बढने लगा। मगर, मुलजिमो की इस कोठरी के एक कोने से आवाज आई— जाति पाति के विभिन्न भेदो को हम भुला सकेंगे, किरण बाबू ?'

हवालात के इस नीरव वातावरण म प्रश्नकर्त्ता के ये शब्द गूज उठे। सबकी आखें एकबारगी इस प्रश्नकर्त्ता की ओर घूम गई। सुनकर किरण ने अनुभव किया कि वक्ता के स्वर म ओज व उसकी भाषा म औरो

की अपना मूल प्रतिकार सुधार है। उसने एक हाथ आखिर तर्क पर जवाब दिया— क्या नहीं भुला सकेंगे ? पर कौनसा उन भेद को हमने याद कर रखा है ? याद रख कर ही हम उनमें अपने कौन से भेद की आशा रख सकते हैं ? निहित स्वार्थों ने ये भेद उभारे हैं दोस्त ! उनके स्वार्थों के लिए राष्ट्रीयता घातक है। सब के सुख के लिए निहित स्वार्थों से संघर्ष करना होगा बलिदान देना होगा सर्वत्र सब में शान्ति लानी होगी और तब कहीं जाकर अपमान अभाव और दुख से हम स्वतन्त्र हो सकते हैं। दूर होते हुए भी हम अपनी मंजिल की ओर अग्रसर होना है। समझे, बन्धु ?

किरण के प्रश्न पर किरण का प्रश्नकर्त्ता चुप था। मगर, क्षण एक की चुप्पी के बाद ही किरण ने महसूस किया कि उसके प्रश्नकर्त्ता को उसके वक्तव्य से पूर्ण सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ है। यही सोच उसने फिर कहना शुरू किया — पूँजीपतियों के हर युग में दुनिया में दो ही जातियाँ साथ रही हैं, भाई ! एक अमीर और दूसरी गरीब। विभिन्न धर्म जाति व देश के अमीर जब अपने संस्कारों को भुला एक हो सकते हैं तो गरीब एक क्यों नहीं हो सकते—हम एक क्यों नहीं हो सकते, भैया ? हमारे सच्चे आत्मबल के वेग के आगे संस्कारों की कच्ची बाँध निश्चय ही स्थिर नहीं रह सकती भैया"— सुन कर प्रश्नकर्त्ता अपने स्थान पर वापिस बैठ गया।

अब तक संध्या की अंधेरी घिर चुकी थी। किरण ने देखा कि हवालाती अपनी अपनी धार्मिक दिनचर्या की तैयारी में संलग्न हो रहे हैं। यह सब देख, विषय को यहीं बन्द कर वह अपने स्थान पर जा बैठा।

किरण स्वयं सोचता था कि उसकी इस तमाम क्रिया को क्या कहा जाय ? निश्चय ही धनवानों के हाथों मिले उनके व्यवहार व साजिश की उस पर यह प्रतिक्रिया थी। पुलिस हिरासत में भोगे हुए विभिन्न नारकीय भोगों को भी अपने जीवन में वह भुला नहीं सकता था। अपनी प्रतिक्रिया के भाषण में जो कुछ भी उसने कहा वह उसकी अनुभूत भावनाओं और विचारों की झलक-मात्र थी। किसी सिद्धान्त के पूर्ण प्रतिपादन की आशा

एसे अवसरों पर किरण स की भी नही जा सकती थी।

थोडी देर के बाद किरण ने देखा कि हवालातिया के दो, तीन, चार पाच क भुण्ड उसक पास आ इकट्ठ ो रहे हैं। उनक आने व अभिवादन के ढग स किरण समझ गया कि वे उससे कुछ पूछना चाहते हैं। किरण क पूछन पर उनम से दो एक ने किरण को उनके मुक्दम की परवी कर देने की प्राथना की। पर तु जब किरण ने ह े बताया कि उस विशेष प्रकार से उनकी सहायता कर सकना उसके लिए सम्भव नही तो वे उससे यही सलाह लने लग कि उ ह अपन बयान यायालय के रुबरू किस तरह देने चाहिए। किरण ने उनकी पेशी का सिलसिला जानकर उ ह सलाह दे दी और अपने दूसरे साथियो की सहूलियत का खयाल क के उ ह वापिस आराम करने को अपनी जगह भेज दिया। थोडी ही देर मे सब अपनी अपनी जगह जा सोये।

थोडी देर बाद जब किरण सोने की चेष्टा कर रहा था उसने अपने पास ही पड हुये दूसरे हवालाती क कर स्पश का अनुभव किया। कहिये —पूछने पर किरण न दबी हुई आवाज म सुना आप किस म आए हैं बाबू साहब ?'

सुनकर किरण को एक बार तो हल्की हसी आई। मगर उसे दबाकर उसने जवाब दिया—धारा तीन सौ उनासी।

प्रश्नकर्ता का दूसरा प्रश्न और आया – पहले यहा क बार हो गए बाबू ?

पहला ही मौका है।' अपन इस उत्तर पर किरण ने सुना—
फिर तो कमाल है। पहला ही मौका और यह बात। वाह !'

किरण की हसी इस बार न रुक सकी। वह खिलखिला कर हस पडा। फिर क्या था ? सोए हुय पुन उठ खडे हुए। क्या बात है ?" का निश्चय निकालन कई एक किरण क बिस्तर के पास आ इकट्ठे हुए। किरण क पूव परिचितों—रामू गगू सत्तार आदि न जब यह सुना कि

किरण को जुर्म जेर दफा चार सौ बीस ताजीरात हिंद के बजाय दफा तीन सौ उनासी ताजीरात हिंद की 'इज्जत' हासिल है तो एकबारगी वे विस्मय में पड़ गये। रामू को अपनी हारी हुई एक बीड़ी की वापिसी की शायद फिक्र हो आई व गंगू को दो लौटाने की। किरण ने दोनों को समझा दिया और सलाह दी कि आयन्दा वे इस तरह की हारजीत न करें बल्कि जो भी उनके हाथ आये उससे मिल-जुल कर अपना शौक पूरा कर लें। किरण की सलाह पर फिर सब अपने अपने आसनों पर जा सोये।

: ८ :

'अरे यह सब क्या है छाया देवी ?' केदार ने कमरे में प्रवेश करते ही पूछा। उसने देखा कि छाया अपने जरूरी सामान को एक जगह इकट्ठा कर शायद कहीं जाने की तैयारी कर रही है। केदार के शब्द सुनते ही उसके हाथ निष्क्रिय हो गए और वह सामने पड़े सामान पर दृष्टि आरोपित किए मूर्तिवत् बैठ गई। उसकी इस मुद्रा से आसानी से अनुमान लगाया जा सकता था कि वह आज उदास है और किसी गहरी चिंता में खोई जा रही है। अपने प्रश्न का उत्तर न पाकर केदार ने फिर उसे दोहराया।

'मैं यहां से जाना चाहती हूं।' क्षण भर की निस्तब्धता को भङ्ग कर छाया ने कहा।

केदार को अपने प्रश्न का उत्तर तो मिला परन्तु उत्तरदाता के भावों की थाह उसे न मिली। शब्द सुन लेने के बाद भी वह एकटक दृष्टि से नारी की इस अगम्य मूर्ति को कई क्षण तक देखता रहा। वह अपनी ध्यानस्थ मुद्रा में स्थिर थी। उसके विचार चालों की इस मंजिल पर गम्भीर मालूम होते थे और लगता था कि वह अपने किसी मकसद के पूरा करने का निश्चय कर चुकी है और उस अन्धकारमय भविष्य की अनिश्चित यात्रा का आरम्भ करना चाहती है। नारी के इस रहस्यमय दुस्साहस के आगे पुरुष केदार का पौरुष फीका था। छाया के उत्तर के बाद उसकी बेचैनी बढ़ रही थी।

'मैंने अपना निश्चय किया है केदार बाबू कि मैं चली जाऊं।'

'परन्तु, क्या ?'

"अब जरूरत नहीं है इसलिए ।"

"अकेली रहगी ?"

क्या आपत्ति है ?"

'परिस्थिति मे क्या अन्तर आ गया है छाया देवी, कि आप इस तरह जाने के लिए उद्विग्न हो उठी हैं ?"

'मैं कई दिन मे ही चल जाने का सोच रही थी ।"

अकारण ?"

इसका छाया ने कोई उत्तर नही दिया ।

केदार ने पूछा— अरुण आ गया इसलिए ?"

"नही यह बात नही ।'

'तब फिर ?'

छाया के पास उत्तर नहीं था । उत्तर म वे आसू जो उसकी दोनो आखों मे झरने लगे ।

केदार उसके पास ही बठ गया । वह जानना चाहता था कि आखिर एकाएक एसा क्या हो गया है ?

'मैं स्वय उनकी खोज करूगी कदार बाबू !" विवश होकर छाया न मुह खोला ।

'यहां से भी तो कर सकती हैं ।

छाया ने सुना परन्तु मौन रही ।

"आप समझती हैं कि केदार आपकी किरण की खोजने में कोई उपाय बाकी रख रहा है ?

"नहीं, केशर बाबू! बात यह है कि पाप मैंने किये हैं। प्रायश्चित भी मुझे ही करना चाहिए। उसका असर उसकी आत्मा से दूर नहीं हो रहा था।

'कहाँ जायेंगी?'

'यह अभी निश्चय नहीं किया है।' सजल दृष्टि से छाया ने उत्तर दिया।

'फिर मैं नहीं जाने दूँगा।'

'ऐसा नहीं हो सकता, केशर बाबू!"

'क्यों?'

क्षण एक ठहर कर छाया ने उत्तर दिया—'मैं भार बनकर नहीं रहना चाहती।'

'किसने कहा कि आप भार बनकर रह रही हैं?'

'मैं ही महसूस करती हूँ।'

'तो यह मेरा दुर्भाग्य है।'

केशर का स्वर भारी हो गया था। उसके हृदय की सारी करुणा इन थोड़े से शब्दों के साथ छाया के सामने उमड़ पड़ी।

'आपने जो मृदु व्यवहार मेरे साथ किया उसके लिए जन्म भर मैं आपकी आभारी रहूँगी। परन्तु आपकी सहृदयता का अनुचित लाभ भी नहीं उठाना चाहिए केशर बाबू। और अधिक एहसान सहने में मैं असमर्थ हूँ। जो किया जितना किया वही मेरे लिए बहुत है। अब और अधिक सहन नहीं कर सकती केशर बाबू।'

"छाया देवी!" कहने के साथ ही छाया की दृष्टि केशर की ओर आकृष्ट हो गई। उसने सुना—'आपने मुझे गलत समझा है।'

"नही, केदार बाबू। यह आपकी सज्जनता है, उदारता की हद है कि आप अपने ऊपर सब कुछ सहते जा रहे हैं। इन तीन महीनों के भीतर न जाने आपको क्या क्या सहने पर मैंने मजबूर किया। देवता के समान आपके मित्र आये और चले गए। अरुण को मेरे कारण आपको बुलाना पडा। मुझ अभागी के पति की खोज मे आपन दिन और रात एक कर रखे हैं। अपने व्यवसाय को भी आपने भुला सा दिया।'

छाया देवी!"—वह छाया को इस विषय मे कुछ भी कहने के लिए रोकना चाहता था। मगर उसने सुना— एक सन्त के साधारण घर को एक सजीली खर्चीली, गृहस्थी मे परिवर्तित कर देने का मुझे दुख है, केदार बाबू!' छाया का वक्तव्य अभी समाप्त नही हुआ था परन्तु साथ ही केदार म भी अब सब कुछ चुपचाप सुनते रहने का धैर्य शेष नहीं था। यह बोला—'बस करो छाया देवी! मगर छाया चुप न हुई। बोली—"जो कुछ भी मेरे हाथों हुआ मेरी मजबूरी से हुआ केदार बाबू मुझे आश्रय की जरूरत थी। मैंने सोचा था कि एक बार आश्रय पाकर मैं बिना किसी अवलम्ब के शेष जीवन बिता सकूगी। परन्तु, वह मेरी भूल थी केदार बाबू! इन्सान के लिए—खास कर औरत के लिए यह असम्भव है कि वह जीवन की लम्बी घडिया बिना किसी सहारे के बिता सके। आवेश की घडिया जीवन की साधारण घडियों से भिन्न होती हैं इस बात को मैं उस समय न समझ सकी थी। अपन उस समय के उस साहस के लिए आज मुझे दुख है। आपकी बात न मान कर मैंने उनके साथ अन्याय किया। उनकी जैसी परिस्थितियों मे से गुजरा हुआ इन्सान उपेक्षा योग्य हो ही नहीं सकता। यह आप ठीक ही कहते थे। आज उनके लिए मेरे हृदय मे सम्मान है। मैं चाहती हू कि सब कुछ अपण करके आज मैं उन्हें पा लू। परन्तु मेरा यह सौभाग्य नहीं है केदार बाबू।' इतना कह अपने आसुओं को पोंछने के लिए फिर उसने अपना अचल सभाल लिया। केदार छाया के इस आवेश भरे वक्तव्य पर चुप था। उसे उसक —— की थाह धीरे

धीरे मिल रही थी। छाया के प्रति अपनी सहानुभूति में उसने इतना ही कहा— बस करो छाया देवी! जीवन के मीठे कड़वे अनुभवों में ही जीवन की सार्थकता है।

आप नहीं जानते केशर बाबू कि जीवन के ये अनुभव जीवन के लिए कितने महंगे हैं। इन्सान अपनी थोड़ी सी उम्र में इनको इस कदर आमदरफ्त को बर्दाश्त नहीं कर सकता, और यदि करे तो उसके लिए जीवन में एक दुखमय अंत के अलावा और कुछ भी नहीं है। इतना कह क्षण एक के लिए वह फिर चुप हो गई। केशर चाहता था कि छाया थम जाय और इसीलिए उसने अपने विचारों को व्यक्त करना मुनासिब न समझा। परन्तु छाया के भाव जीवन की भिन्न भिन्न घटनाओं का प्रसंग ले बाहर आ पड़ने को जैसे आकुल हो रहे थे वह बोली— वे बुरे नहीं थे, मैंने ही उन्हें बुरा बनाया। पैसे को ना-कुछ समझने वाले के सामने पैसे की सर्वमान्यता घोषित कर मैंने ही उनके आतंरिक भावों को चोट पहुंचाई। उन्होंने सपर्श नहीं किया केशर बाबू! मैंने ही गलत मोल लिया था वे तो उससे बचना चाहते थे। उनके व्यक्तित्व की कीमत मुझे पैसे के पैमाने से नहीं आंकनी चाहिए थी। आज मैं महसूस करती हूं कि नारी के लिए पुरुष क्या है पत्नी के लिए पति क्या है।' इतना कह वह फिर रोने लगी।

केशर बोला — किरण का मेरे पर विश्वास रहा है छाया देवी! मुझे खुशी है कि उसकी सम्पत्ति मेरे हाथों आज सुरक्षित है। उसकी सम्पत्ति का मैं उसी का मालिक सौंपना चाहता हूं। परन्तु अपनी इस इच्छा को आपकी सहायता के बिना मैं पूरा नहीं कर सकता छाया देवी! पास पड़ोस के आस पास के दूसरे लोग क्या कहेंगे जब आप मेरे घर में आकर रहने लगेंगी? निश्चय आयेगा। उस समय मुझे कितना दुख होगा जब मैं लोगों को यह कहते सुनूंगा कि केशर अपने मित्र की पत्नी को अपनी सुरक्षा में न रख सका अथवा किरण की पत्नी केशर के यहां पड़ी है को दर्शित

पाकर किसी और जगह चली गई।'

'औरत का आवेग उसके अधिकार की बात नहीं है केदार बाबू! हो सकता है यह भी एक आवेश ही हो। परन्तु आवेश की यह स्थिति केदार बाबू व उसकी रक्षिता छाया दोनो के लिए अच्छी है। बहुत सभव है कि आयन्दा वह स्थिति न रहे।

"क्यो ?

छाया ने एक क्षण के लिए केदार बाबू की आखो मे देखा। उसके सारे भाव इस समय उसकी इस दृष्टि में समाविष्ट थे। छाया ने आखें झुका लीं। बोली—'मुझे अपने पर विश्वास नही है, केदार बाबू।'

नारी के इस उत्तर ने पुरुष केदार को नतमस्तक कर दिया।

"बोलो किसकी ?'

"मेरी।"

"मेरी सही।"

'मेरी नही, तुम्हारी कहो।"

'मेरी नही, तुम्हारी—" अरुण हसने लगा। छाया भी हसने लगी। हसते हसते ही बोली—'मेरी कसम खा कि मेरी आज्ञा के बिना यहा से भागगा नही।"

"छाया देवी की कसम कि उनकी आज्ञा के बिना उनके पास से नही भागूगा।"

"ठीक। अब मेरे साथ ही चला चल। साथ ही अरुण को बाह से पकड वह अपने साथ अपने बठने की जगह ले चली। दोनों पास पास बठ गए। छाया ने पूछा— अरुण ' तुम कविता क्यों बनाते हो ?

इसान कविता क्या बनाता है छाया देवी ?'

यही सही।

'प्रश्न मेरा है छाया देवी।'

'परन्तु उत्तर मैं चाहती हू, अरुण।'

अरुण चुप हो गया। उसे फिर हसी आ गई। छाया ने पूछा— "कवि नही जानता कि वह कविता क्या बनाता है ?

"वह इतना ही जानता है कि वह कविता बनाता है और वह उससे बन जाती है।'

देखू तुम्हारी कविता !" कह कर छाया ने अपने पास पडे उस

कागज को उठा लिया। थोड़ी देर देखने के बाद वह कुछ श- चुन चुन कर उस कविता की पंक्तिया म से स्वय सुनाने लगी। 'अद्ध रात्रि से उषाकाल तक जगते रहे ? क्यों ? खर मधुर स्पर्श से सिहर उठे वाह !"

अरुण ने छाया की ये आलोचनापूर्ण उक्तिया सुन उसके हाथ से अपनी कविता छीननी चाही। परन्तु छाया ने उसे छोड़ा नही। वह दब स्वर म झट से बोल पड़ी— देखो ! केदार बाबू आ गए हैं।"

केदार का नाम सुन अरुण चौंक कर अलग हट गया। छाया की युक्ति काम कर गई। अरुण अपने प्रयत्न मे विफल हो गया था। अपने हाथ के कागज को सभाल कर वह फिर बोली— अभी तो बहुत बाकी है। अरुण बाबू, जरा सब्र रखिए।'—उसने फिर पढना शुरू किया— करुण व्यथा से विकल प्राण। खूब ! भई वाह ! कह कर वह एक बार और हस पड़ी।

'तो मैं जाता हू।"

"क्यो ?'

मैं चला— इतना कह अरुण ने द्वार की ओर अपने पाव बढा दिए। आवाज हुई—'मेरी कसम है, अरुण।" स्वर छाया का था। अरुण क पाव रुक गए उसने घूम कर कहा— फिर अपने इस व्यग को बन्द करो।'

'करती हू। अपनी कविता को भी सुनने का तुम में साहस नहीं है अरुण ?" मगर अरुण चुप था। वह लौट गया। छाया ने फिर कविता को सभाल लिया। उसी अपने ढग म वह फिर पढने लगी— घुल गई आशा हृदय की—बन गए अरमान पानी—आसुओं म वह चली अब, क्षुद्र जीवन की कहानी— और प्रश्न किया—'हो गया जीवन

समाप्त ?'

अरुण शान्ति से छाया क प्रश्नों व उसके व्यंग भरे पाठ को सुनता रहा। क्षण एक अरुण की ओर अर्थभरी निगाहों से देख कर उसने फिर पाठ आरम्भ किया—"नीरव भाषा, अज्ञात सखि।" मगर रुक कर बोली—'यह समझ म नहीं आया।

'और कुछ ?"

जरा समझाओ न ?"

"अलग अलग नहीं, सब ही समझ लेना ?'

अच्छी बात कवि जी। और आगे पढना शुरू किया—'अनात राग अनात गीत, नादान पथिक।" खैर। सब साथ ही समझना होगा। 'अमर गीत को अजर वीणा पर अनन्त पथ में फिर गुस्ताखी ?' परन्तु अब तक अरुण अपनी कविता क कागज को छाया की हथेली म पकड चुका था। बोला— इस बार नहीं छोडूगा।"

कविता की छीना झपटी म दोना गुथ से गए। थोडी देर इसी भांति रहकर छाया शिथिल हो गई। कविता अरुण ने छीन ली। पराजित छाया ने कहा—'खैर ?'

"अब तो यही कहोगी। अरुण न कहा।

तुम्हारी कविता म सत्य नहीं है अरुण। उसका स्वर अब गंभीर था।

क्या ?"

'तुम अद्ध रात्रि म कब जाग खडे हुए थे अरुण ? किस सखी के मधुर स्पर्श से इस तरह सिहर उठे थे कि तुम से उषाकाल तक सोते न बना ? हृदय की भाषा घुल गई, अरमान पानी बन गए, जीवन कहानी

नही करते, अरुण, और इसलिए मानव की साधना सफल नहीं होगी। वासनाओं की तुष्टि के बिना वासनाओं से मुक्ति पाना इन्सान के लिए असंभव है अरुण ! बाढ़ को बदन से सागर का हिलोरें सन से रोका है किसी ने ?'

आज तुम्हें क्या हो गया है, छाया देवी ?

'होश में हूँ अरुण ! मेरी इन सब बातों से तुम्हें भयभीत बिल्कुल नही होना चाहिए। मैंने भी तो तुम्हारी कविता को पढ़ा है। मैं उससे डरी थी ?

छाया देवी !

हां अरुण ! मैंने जीवन देखा है अरुण ! मैं जानती हूं यह जीवन क्या है। आशा—अरमान—मधुर स्वप्न—बस। इनकी स्वप्निल स्मृतियो तक ही जीवन की सार्थकता है। तुम उस तक पहुंच गए हो, अरुण ! परन्तु, आगे न बढ़ना। यदि बढ़े तो फिर जीवन जीवन नही रहेगा। आशा वास्तव में धुल जावेगी अरमान पानी बन जायेंगे जीवन कहानी वह बह कर अपना अंत कर लेगी। वह जीवन नही होगा, अरुण ! उस समय जीवन भार होगा। उस समय कविता नही बनेगी। आशा, अरमान स्वप्न सब आंसू बन बन कर बह निकलेंगे। जीवन की वह स्थिति जिसमें मौत ही जीवन की आशा हो, कितनी भयंकर है अरुण ? '

छाया देवी !'

डरो मत, अरुण ! मैं होश में हूं। आवेश का होश ऐसा ही होता है, खास कर औरत के आवेश का। अपने आवेश को संयत रखने में वह पुरुष से कम चतुर व समर्थ है, अरुण ! मेरे भी एक पुरुष था। हर औरत के एक पुरुष होता ही है। हर पुरुष के भी एक औरत होती ही होगी। यह इसलिए कि, मानव को अपने निर्माता की यह एक देन है।

"छाया देवी।'

'सुनो, मुझे अपना तुम्हारा, इस घर का—सब का होश है अरुण ! जिस दिन वह होश और यह अधिकार न रख सकूंगी उस दिन यहां से चली जाऊंगी।'

"आज तुम कैसी बातें करती हो छाया देवी ?'

"तुम्ही ने तो मजबूर किया है अरुण !"

'मैंने ?'

हां, हां, तुमने अरुण ! तुमने।'

'छाया देवी !'

'यदि नहीं तो इतने दिनों से अपनी इस कविता को क्या गा रहे हो ? इस घर में क्या और इन्सान नहीं बसते ? उनके हृदयों में क्या सजीवता नहीं है ? तुम उनके भावों को क्या जगाते हो ?

मैं जगाता हूं छाया देवी ?

यह पाप तुम करते हो, अरुण। तुम्हारा—तुम्हारे समाज का जब यह आदर्श नहीं है तब उसे गा कर तुम औरों को पीड़ा क्या पहुँचाते हो ? तुम नहीं जानते कि अतृप्त वासना—तुम्हारे इस संगीत पर किस कदर व्याकुल हो उठती है ! क्या कला का आश्रय तुमने इसलिए लिया है कि तुम हंसो और सुननेवाले आंसू बहावें ? क्या कलाकार सब ऐसे ही होते हैं ? अपने भावों को शब्दों में फेंकने के बाद क्या उनके पास कुछ नहीं बचता ?

'क्या नहीं बचता छाया देवी ?'

क्या बचता है अरुण ?'

'उन भावों का स्रोत—हृदय।"

'झूठ बोलते हो, अरुण।

नहीं छाया देवी ! मैं तुम्हारी परिस्थिति को समझता हूं। मेरे

'मैंने इतना ही कहा कि मैं नौकरी के लिए नही आया केवल मिलने चला आया था।'

तुमने कुछ नही किया अजीत।"

क्या करता मैं?'

'दो बात लगाते।

आश्रय चाहने वाले म यह शक्ति कहा बचती है किरण? मैंने उस स्थान को तुरत त्याग देने म ही अपनी कुशलता समझी और चुपचाप वहा से चला आया। अफसोस तो मुझे इस बात का अधिक है कि उनकी नौकरी स्वीकार करने क पहले ही उन लोगो ने मेरे साथ नौकर जसा व्यवहार शुरू कर दिया।

इन धनकुबेरो क यहा यही होता है अजीत। अपने घर आए हुए की इज्जत करना ये अपनी तौहीन समझते हैं।

तुम्हारा सामान?

सामान अपनी फिक्र आप करेगा किरण।'

अजीत!

'मुझे सामान की फिक्र नही है। अपनी फिक्र मुझे अधिक थी।

अच्छा किया तुमने! यदि उसके पास तुम रह जाते तो मुझे बडा दुख होता। इन्सान का आतिथ्य करना तो इन तुच्छ व्यक्तियो के भाग्य म ही नही है।

चलते चलते व एक भोजनालय के समीप पहुँच गये थे। किरण अजीत को उसी म लिवा ले गया।

: ११ :

"छोटे छोटे बालकों को वेद और गीता पाठ करते देख पिता जी आज बहुत प्रभावित हुए मास्टर साहब !"

'वह सब उन लोगों को प्रभावित करने के लिए ही किया गया था, तारा।"

"आपको अच्छा नहीं लगा ?"

"नहीं !"

'क्यों ?'

'तुम इसे नहीं समझ सकतीं बालकों के लिए ऐसी शिक्षा सार्थक नहीं है। कहा सहस्रों वर्षों पुराने वेद और कहा आधुनिक युग ! । जिन बालकों को वेद व गीता से ग्लानि करानी हो तो उन्हें इस तरह की शिक्षा दी जानी चाहिए। अपने भविष्य जीवन में ये आश्चर्यमयी नन्हीं नन्हीं मूर्तियाँ इस पकडाय पथ पर नहीं चल सकेंगी। ब्रह्मचर्याश्रम के ये वेद-पाठक और गीता पाठक स्वच्छन्द होने पर वेद और गीता के नाम से चिढ़ेंगे, तारा, कारण अभी वे उनके मन्तव्य को ग्रहण नहीं कर सकते। इतनी भारी और मजबूत चीज इतने कच्चे और कमजोर हाथों में आजकल की विपरीत परिस्थिति में नहीं दी जानी चाहिए। आश्रमों की यह शिक्षा बालकों की मनोवृत्ति के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत घातक है। बीसवीं सदी के वातावरण व परिस्थितियों को मिटाए बिना उसके विरुद्ध शिक्षा देने में क्या सार्थकता हो सकती

कोई काय सिद्ध नहीं करती।"

इस म दोष ?

'आप कहिए मेरा मैं कह दूगा आपका।'

यह तो कोई उत्तर नही हुआ मास्टर साहब।

अ प सुनना चाहते हैं ?

जरूर।

'इस बात पर तो आप भी सहमत होंगे कि हर सस्था को जन्म किसी न किसी उद्दे य को सामने रख कर दिया जाना है।

निश्चय ही।

प्राय समाज सेवा के लिए ही सस्थाए चालू की जाती हैं।'

मानता हू।

सस्था के नियम कोष प्रब ध का उत्तरदायित्व उसके प्रवतकों के हाथ म होना है।'

आगे कहिए।

पर उन नियमो को समाज पर लागू करना हमार इस युग म उस के सस्था प्रवतको के हाथ के बाहर की बात है लालाजी। जब तक किसी सस्था मे अपने नियमो को समाज पर लागू कर सकने की शक्ति नहीं है तब तक वह सस्था मुर्दा है। उसके होने से किसी को फायदा नही न होने स किसी को नुकसान नही। सस्था को जिन्दा रहने क लिए सवमा य सत्ता की आव यकता है लालाजी जो सिफ सवमा य व्यवस्था द्वारा ही दी जा सकती है। उस सस्था को जिसे सवमा य यवस्था व उसकी सत्ता का सहयोग प्राप्त है उतना पथ भ्रष्ट होने का भय नही जितना कि एक व्यक्ति

व समुदाय विशेष की संस्था को मेरी बताई जीवित संस्था मे व्यक्ति व समुदाय की सनक व शौक की जगह राष्ट्र समाज व उसके हृदय की आवश्यकताओं की पूर्ति को, सवमान्य सिद्धान्त व नीति के अनुसार, स्थान मिलेगा। हमारे इस युग मे प्रथम तो ऐसी संस्था का अस्तित्व ही नहीं हो सकता और प्रयोग रूप मे यदि कोई प्रयास भी करे तो उसके जन्म के साथ-साथ उसकी मृत्यु का सामान भी उसे तयार रखना होगा।"

"आप बहुत दूर की बात करते हैं मास्टर साहब! आपकी बताई अनुकूल परिस्थितियो की यदि प्रतीक्षा की जाय तो ठहरने का फिर कोई ठिकाना ही नहीं रहता। चाहे जिस उद्देश्य से सही जो कुछ भी जन सेवा बन रही है वह भी बन्द हो जाय।'

उसका बन्द होना ही अच्छा है लालाजी, जिससे इन्सान धोखे मे तो न रहे। आपके स्कूल और आश्रम जनता को शिक्षित भी नही बनाते और अशिक्षित भी नहीं रहने देते। अस्पताल उसी तरह जनता को रोग मुक्त नही करते और मरने भी नही देते हैं। उसी तरह ये मन्दिर हैं। मालूम होता है कि ईश्वर इनमे से निकल कर कही चला गया है और वापिस आना नहीं चाहता।'

सुनकर श्रोता को हसी आ गई—शायद, तारा के मास्टर की इस नासमझी पर। हसते हसते ही व बोले— धर्म का विषय संगीत की तरह सरल नही है मास्टर साहब। ईश्वर और उसकी चर्चा छोडिए। अभी आप उस उम्र म भी नहीं पहुचे।

'न सही लालाजी! पर इतना तो हरेक समझता है कि ईश्वर सबका एक है और वह सब म समान है।'

'किसने नहीं कहा ?'

कहा किसी ने नहीं पर समझा एक ने भी नहीं।"

'कैसे ?'

'जो ईश्वर को मानता है वह अपने को नहीं मानता लालाजी ! वह ईश्वर को ही मानता है—सिर्फ ईश्वर को। उसके लिए प्राणी मात्र समान है—बल्कि एक है। अपने ही जैसे दूसरे प्राणी से जो घृणा करता है उसका हृदय समझ उसका अपमान करता है सम्प्रदाय के विभिन्न झगड़ों मे पड़कर एक ईश्वर के अपने तुम्हारे और उनके ईश्वरों में टुकड़े करना नहीं चलता—उस आस्तिक क्या कह कर कहा जाय लालाजी ?''

'आप समाजी मालूम होते हैं।'

मैं समाजी सनातनी कुछ भी नहीं लालाजी। मैं किसी से कभी भी दीक्षित नहीं हुआ। जो कुछ भी मैंने कहा है अपने अनुभव से। हर इन्सान को जहा तक मैं समझ पाया हू यही अन्त प्रेरणा होती है परन्तु हमारे इस युग म सामाजिक प्राणी स्वार्थ अथवा संस्कारों की कमजोरी के कारण अपनी इस भीतरी आवाज को सुनी अनसुनी कर देता है। हमारा समाज संस्कारों की सड़ी लाश से छुटकारा भी नहीं पाता न नए युग के साथ नए परिवर्तनों को अपनाता ही है।'

आप मूर्ति-पूजा को तो फिर नहीं मानते होंगे ?

'मानता हू। पर अपने तरीके से लालाजी !'

उनके भी फिर तरीके हैं ? —प्रश्नकर्ता साथ ही कुछ मुस्करा भी दिए।

मास्टर साहब बोले—'जरूर लालाजी ! मैं अन्य मूर्ति पूजकों की तरह यह विश्वास नहीं करता कि मूर्ति का देवता उसके आगे सर नवाने अथवा उसकी लगातार नियत समय पर पूजा अर्चना करने से किसी कार्य को सिद्ध करने में समर्थ है। नियम जीवन की साधना है लालाजी ! चपल मन को नियन्त्रित करने के ये उपाय मात्र हैं। जहां तक मैं समझने मे

समय हुआ हू हिन्दुओ का धम शास्त्र मानव को एक आदश स्तर पर ऊचा उठाने की कोशिश म रहा है और इसीलिए धम शास्त्रियों ने अपने ग्रन्थो म सनातन रूप से आदश चरित्रों की रचना की है जिससे मानव उनका अनुसरण कर अपना सुधार कर सकें। शास्त्रो म देव देवियो के आख्यान इसलिए नही लिखे गए है कि मानव पत्थरो को उनका नाम दे पथ भ्रष्ट हो परन्तु इसलिए दिए गए हैं कि अपने ध्येय के अनुसार अपने देवता को चुन उसको आदश मान मानव अपना जीवन वितावें। धम व उसके शास्त्रों की बुनियाद प्रथमत समाज की सानिन आदश सुव्रता व उसकी सुरक्षा मे है और इसलिए राम, भरत लक्ष्मण, हनुमान सुग्रीव सीता आदि की जीवनियो से शास्त्र विभूषित किए गए हैं। एक सामाजिक प्राणी को समाज म रहते हुए स्वामी, भाई चाकर, मित्र पत्नी आदि की स्थिति मे होना अवश्यम्भावी है। किस स्थिति म किसका क्या कर्तव्य है यही सब हमारे शास्त्र बताते हैं। सामाजिक मानव इन्हें अपना पथ प्रदशक मान अपने जीवन पथ पर सुगमता से चल सकता है। परन्तु जिस तरह एक शिक्षार्थी बालक गुरु गुरु रटते रहने से स्वयं गुरु के समान योग्य नही बन सकता उसी तरह कोई भी पुरुष अपनी आकाक्षा के आदश देव के प्रसाद को तब तक नही पा सकता जब तक कि अपने जीवन म वह उस आराध्यदेव के चरित्रो को न उतारे। श्री हनुमान का बल उनकी शक्ति से प्रभावित हुए उनके उपासक को तभी मिलगा जब वह उपासक अपनी साधना म ब्रह्मचय व स्वामी सेवा को वही महत्त्व देगा जो श्रीहनुमान ने अपने जीवन म दिया था। मेरे विचार से मूर्ति पूजा की सामाजिक प्राणी के लिए यही सार्थकता है और इस सार्थकता को सजीव रखने के लिए ही हमारे धम शास्त्रियो ने पत्थर म देवत्व को देखा था। हर देवी-देवता किसी आदश गुण या शक्ति का प्रतीक है लालाजी! हम पत्थर की पूजा नही करते लालाजी बल्कि पत्थरमें एक ऐसी मूर्ति की—एक ऐसे आदश जीवन की जो हमारी आकाक्षाओंके अनुकूल है आराधना करते हैं जिसम अपने जीवन म

उस सफल जीवन की रोशनी हम पा सकें।"

तारा के पिता जी के लिए मास्टर की यह युक्ति विश्वस्त तो शायद थी पर मान्य नहीं थी। आप एक धार्मिक विचारों के वृद्ध पुरुष थे। धर्म भीरु इतने थे कि शास्त्रों में लिखी किसी भी बात पर तर्क करने आपको पाप करने का भय होता था। इसीलिए अपने जीवन में कभी भी आपने विभिन्न साम्प्रदायिक सिद्धांतों से पैदा हुई अपनी उलझनों को सुलझाने की कोशिश नहीं की—ऐसा न हो कि शास्त्रों पर अविश्वास करने का अपराध कहीं बन जाय। आपका अधिकतर शास्त्रीय ज्ञान सिर्फ श्रवण पर सीमित था और उस पर जीवन भर के साम्प्रदायिक संस्कारों की अमिट छाप थी। अपनी इस अवस्था में शास्त्रों पर बहस करके अपने अब तक के कमाए हुए पुण्य को आप सहज ही में खो देना नहीं चाहते थे। मास्टर की बात सोचने से ठीक जचती थी परन्तु उम्र की इस मंजिल पर उसे ठीक समझना सुलभ नहीं था।

'अपने अपने विचार हैं।' कहकर वे जिस द्वार से आए थे उसी से वापिस चले गए। अपने पिता के द्वार से निकलते ही तारा ने अपने हाथ की अंगुलियों से अपने पास पड़े सितार के तारों को पुनः एक साथ झंकृत कर दिया। अपनी शिष्या की यह हरकत देख कर मास्टर साहब ने पूछा— यह क्या तारा ?

आपकी विजय की टंकार !'

ओह ! साथ ही उनके मुंह पर अपनी शिष्या की सी मुस्कान सी खिली ! इसी समय दीवान की घड़ी ने एक एक करके पांच बजा दिए। मास्टर साहब उठ खड़े हुए।

आज तो कुछ भी नहीं हुआ। आयन्दा परसों पाठ होगा फिर कुछ और।'

"यह सब पाठ नही था ?"

"मेरा मतलब सगीत से है।" दोनो की मुस्कान हल्की हसी मे खिल पडी। मास्टर साहब को शायद जाने की जल्दी थी। वे पाव बढाकर कमरे से बाहर निकल पडे। तारा कमरे के द्वार तक गई और क्षण एक खडी रह कर वही से वापिस लौट आई।

मास्टर साहब ने कोठी के बाहरी फाटक को अभी पार नही किया था कि उनकी भेंट अन्दर आते हुए हिन्दुस्तानी साहब से हुई। देखते ही आश्चय से प्रवशक ने पूछा—'हजरत तुम यहा कहा ?'

"यही।"

"किस तरह ?"

यह अन्दर वाले बताएगे ?'

"तुम नही ?"

'नहीं।'

है तो सब खरियत ?'

"नहीं है तो अब हो जायगी।'—इतना उत्तर दे हसकर उत्तर-दाता कोठी के बाहर चल दिया। प्रवेशक की व्यग भरी मुस्कराहट दूसरे ही क्षण गम्भीरता मे बदल गई। वह खडा हो दो एक क्षण इस जान वाले को देखने लगा और फिर किसी निश्चय पर मानों तुरन्त पहुच कर अपने पथ पर बढ़ चला।

× × ×

'कौन था ?"

तारा का सगीत मास्टर।"

आप जानते भी हैं यह कौन है ?"

"क्यों नहीं।"

क्या जानते हैं ?

"मास्टर है। अपने काम में होशियार है।"

'बस ?'

'इससे अधिक जानने की जरूरत ?'

जरूरत है लालाजी। गृहस्थी में चाहे जैसा ऐरा गैरा घुसना नहीं आना चाहिए।

'क्या कहते हो ?

सच कहता हूं लालाजी ! आपका यह मास्टर एक सर्टिफाइड' डाकू है। सात माह की सख्त कैद का सजायाफ्ता अभी हाल ही में यह हुआ था।'

सुरेश !' लालाजी सजायाफ्ता का नाम सुन चौंक पड़े। उन्होंने सुना— 'आप नहीं समझते लालाजी कि ये सफेद पोश किस तरह दूसरों के घरों में अपना घर बनाते हैं। आज उसने मुझे देख लिया है। कल यदि वह यहां आ भी जाय तो आप मुझे झूठा समझ लेना। हम तो रोज इन्हीं लोगों से काम पड़ता रहता है। साथ ही वह हंस पड़ा।

सुरेश पुलिस का कर्मचारी था। उसकी अधिकार भरी बातों के आगे लालाजी की सारी सद्‌भावनाओं ने अपनी नींव छोड़ दी। उन्हें करीब-करीब यह विश्वास हो आया कि तारा का मास्टर वास्तव में ही एक सफेदपोश बदमाश है। उनके कानों में सुरेश के ये शब्द कि कल यदि वह यहां आ भी जाय तो मुझे झूठा समझ लेना' बार बार गूंजने लगे। मास्टर' की बातों को देखते हुए सुरेश की यह बात एकाएक जचती नहीं

थी परन्तु उस पर विश्वास करना ही उन्होंने उचित समझा। न जचने की बाबत उनका हृदय तो साख देता था परन्तु हृदय की साख को कानूनी वास्तविकता के आगे झुकने की आदत थी। वह झुक गई। हृदय की इस आवाज ने लालाजी के विश्वास में इतना अन्तर तो इस समय ला दिया कि वे अपने निर्णय का प्रगटीकरण सुरेश की कसौटी की परीक्षा तक जो 'मास्टर' के आने न आने पर आश्रित थी, करने के लिए तैयार नहीं हुए। बोले—'तुम्हें विश्वास है कि कल वह नहीं आयगा?

'मुझे तो विश्वास है वह कभी नहीं आयगा।'

"और यदि चला आया?

फिर भी मेरा कथन असत्य नहीं।"

लालाजी दो एक क्षण अपने विचारों की उथल पुथल में खोए से रहे। सुरेश के इस समाचार से उन्हें चोट लगी। गम्भीर होकर उन्होंने पूछा—'कल दो बजे दोपहर यहां आ सकोगे?'

'जरूर।

"फिर जरूर आना, मगर कल तक इसका जिक्र कहीं घर में या बाहर न छेड़ना। तारा से भी नहीं।"

"जो आज्ञा।"—इसके बाद दोनों उठ खड़े हुए। सुरेश शायद वापिस लौट जाने के लिए।

: १२ :

किरण ने अपने कमरे के द्वार को धक्का लगाया, आवाज दी—'अजीत !''

अजीत सो रहा था। आँखें मलते हुए उसने द्वार खोला। पूछा—'क्या बजा आए ?'

'छ।'

'बड़ी नींद आई।'

'आनी ही चाहिए थी।'

किरण ने कपड़े उतारे तब तक भोजनालय का नौकर चाय ले आया। चाय पान पीते अजीत को हल्की सी हंसी आगई। शायद, वह किसी विचारधारा म बह निकला था। किसी घटना की याद ने उसके मुह पर यह अप्रिय हल्की हंसी ला दी थी। किरण ने पूछा भी—'क्यो ?

'यो ही कोई खास बात नहीं।'' अजीत ने बात टाल दी।

नाश्ता समाप्त कर दोनों सड़क पर आए, और सिनेमाघर की ओर चल पड़े। अभी सिनेमागृह कुछ दूर था कि दो भिखारी बालक उनके साथ हो लिए। पाच-सात कदम पीछे चल कर उनमें से एक ने कहना शुरू किया—'मालिक सुख रखे !

उनकी आशीष दोनों ने सुना पर वे यह जानते थे, कि रास्ते के इन भिखारियों से बोलने की बजाय न बोलना ही अधिक अच्छा है और इसीलिए उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। उधर ये भिखारी भी समझते थे

कि सडक क दानो महात्माग्रों पर एक आशीष का कुछ असर नहीं होता। वे पीछे लगे रहे। जब किसी का भी इन पर असर न हुआ तो भिखारियों ने अपनी मजबूरिया का सहारा लिया। उनम से एक बोला—"सुबह से एक दाना भी मुह मे रखना हराम है बाबूजी ! बिना मा-बाप के बच्चे हैं यदि पैसे दो पैसे की भी मेहरबानी हो जाय तो आज की रात काट देंगे।'

किरण और अजीत अपने गन्तव्य पथ पर बढते ही गए। भिखारी बालकों ने भी उन्हे छोडा नहीं बोले—'मालिक के नाम पर बख्शो बाबू ! उसने देने लायक किस्मत दी है।

अब दोनो को हसी आ गई। बालकों को इसका भान मिलते ही वे आशा भरे एक नये उत्साह के साथ उनके पीछे चिपक गये। दोनों बोले—'खुश रखे मालिक। बख्शो, बाबू ! सच कहते हैं एक दाना भी सुबह से मुह मे नहीं रखा है।

'सच कहते हो ?' ठहर कर किरण ने पूछा।

'जी !' दोनों बोल पडे।

'मुसलमान हो ?'

भिखारी हैं। भिखारियों का क्या हिन्दू और क्या मुसलमान ?" —एक बोला।

'फिर भी ?"

'भिखारी भिखारी ही होते हैं बाबा ! वे हिन्दू मुसलमान कुछ भी नहीं होते।" दूसरे ने जवाब दिया।

मैं जानता हूँ तुम्हें। अपने मालिक की कसम खाओ कि उसने सुबह से तुम्हे कुछ भी खाने को नहीं दिया।' साथ ही किरण ने एक गभीर गहरी दृष्टि से दोनों बालकों की आखों मे देखा। भिखारी बालक किरण

की इस दृष्टि का सामना न कर सके। उन्होंने आपस में एक बार दृष्टि मिलाई और फिर नतमस्तक हो दोनों ने भिक्षा में अपनी अपनी हथेलियाँ प्रश्नकर्ता के आगे फला दी।

"क्या कहते हो?'

मगर बालक चुप थे।

जवाब दो!

'जवाब तो दे दिया हुजूर!' एक ने कहा। सुन कर अजीत के चेहरे पर आश्चर्य की कुछ एक रेखाएं आ घिरीं।

दूसरा प्रश्न फिर हुआ— किसके यहाँ मुलाजिम हो? भिखारी बालकों ने अपने हाथ समेट लिये और हसकर वहा से चल दिए। अजीत के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने पूछा— 'ये नौकर हैं?

अब भी विश्वास नहीं आया?

भीख मागने की नौकरी?"

'और क्या! यह दिल्ली है अजीत! हमारे हिन्दुस्तान की राज धानी!"

दोनों को एक गहरी सास आ गई। कुछ कदम और चलने के बाद वे एक सिनेमागृह के सामने आ गए। पास पहुचकर दीवार में लगी तस्वीरों व विज्ञापनों को देखना शुरू किया। उन्हें देखकर हटे ही थे कि सामने से कदम बढ़ाकर एक भले से आदमी ने सलाम किया। बोला— जनाब को पेट साहब याद फरमाते हैं।"

पेट साहब?'

जी। उत्तर के साथ ही इस शख्स ने एक सजे हुए आफिस की ओर संकेत कर दिया व खुद रास्ता दिखाने की गर्ज से आगे हो लिया। किरण व अजीत को इस शख्स ने मौका ही नहीं दिया कि वे उससे बुलाने

वाने इस साहब का परिचय पाते। वे उसके साथ हो लिए। भीड़ से दूर अभी पाच सात कदम मुश्किल से बढ़े होंगे कि यह शख्स हठात् ठहर गया। किरण और अजीत ने देखा कि उनका यह सन्देशदाता नतमस्तक हुआ उनके आगे स्थिर रह गया है। किरण व अजीत से दृष्टि मिलते ही इसने झुक कर एक लम्बी आदाब बजाई और लगा दुआए देने— खुश खुश रहे, इस पेट को भरने के लिए हर हुनर की इन्सान मदद लेता है। ताबेदार एक बहुरुपिया है। शायकीनो की रहमदिली पर गुजर करता है। चार आना, आठ आना रुपया दो रुपया रईसो के हाथ का मैल है। हुक्म हो जाय बाल बच्चे दुआए देंगे। इतना कह उसने एक सैनिक सलाम बोली और फिर तुरत हाथ फैला कर एक दीन याचक की सूरत बना उनके सामने स्थिर रह गया।

किरण और अजीत अब समझे कि असल बात क्या है। उन्हें हसी आगई। किरण बोला — तुमने ठीक आसामियो को नही चुना।"

सरकार माई-बाप हैं। उसने साथ ही एक मुजरा और अज कर दिया। शायद इनाम की आशा थी।

"यह धोखा किस तरह खाया ?"

ताबेदार ने काम दिखाया है, जनाब ! जरा जेब सम्भालिए !' किरण ने जेबो मे हाथ रखते हुए कहा— यह तो दर्जी की बेवकूफी है। उसे भी तुम्हारी तरह ही धोखा हुआ था। क्षण एक किरण की भाव रेखाए देखने से उसकी आशा दूर हो गई। किन्तु मुस्कराकर बोला— 'सिलाई का बिल पेश करने पर उसकी बेवकूफी दूर हो गई होगी सर-कार— किरण उसकी गुस्ताखी समझ गया। अपनी मर्यादा से दूर वह असयत हुआ जा रहा था। किरण ने कठोरता से कहा पर अभी तो तुम्हारी दूर करनी है।

उस भी हुई ही समझिए। अच्छा, आदाब। उसने हाथ समेट

लिया और उसी क्षण वहा से मुस्कराता हुआ चल दिया। दिल्ली के इस चतुर मनोवैज्ञानिक से अपने दाता की मनोवृत्ति अब तक छिपी नही रही थी।

अजीत अपने आश्चर्य से अभी सभला नही था, कि किरण ने उससे कहा— क्या सोचते हो अजीत ? कमाई के अनेक तरीके हैं। दुनिया म अग्रेजी राज्य रहते भारत मे ऐसे पेशो की कभी कमी नही आयगी।'

देख रहा हू।'

'जिन्दगी भर देखते जाना। ये आश्चर्य कभी कम न होंगे।'

वे वापिस लौट गए। खिडकी के पास खडे होकर जब किरण टिकट खरीद रहा था तो उसे अपना नाम सुनाई दिया। देखा तो एक परिचित मूर्ति पीछे खडी पुकार रही थी। बांह पकडकर इसने किरण को काउटर से पीछे खींच लिया। बोला— पहिचाना ? किरण ने इस शख्स को ऊपर से नीचे तक देखा और फिर अपनी दृष्टि प्रश्नकर्त्ता की दृष्टि म गाड दी। पुन प्रश्न हुआ—

नही पहचाना ?

'नही।

फिर आइए।" और साथ ही उसने किरण की बाह एक बार और पकडी और उसे एक किनारे ले चला। अजीत विस्मय से देखता रहा।

'अपने साथी को नही पहचानते किरण भैया ? इस बार किरण की स्मृति लौट आई। बोला—"ओह तुम ?' मैं नाम भूल गया हू ? नारायण बिल्कुल ही बदल गए। माफ करना भया !' और वह उससे वहीं अपनी भुजो म लिपट गया। अब तक अजीत इनके पास सरक आया था। किरण

न आते ही अजीत का परिचय अपने इस साथी को दिया। 'मेरे मित्र अजीत।" अजीत इस इन्तजार में था कि किरण इस नए साथी का परिचय उसे दे। मगर इस नए साथी ने यह अवसर स्वयं ही अपने हाथ में ले लिया। बोला—'किरण बाबू का मैं भी एक साधारण साथी हूं। बड़ी खुशी हुई!' साथ ही दोनों के हाथ बढ़ कर मिल गए।

आपका शुभ नाम?'

मुझे हरीश कहते हैं।" किरण के चेहरे पर इस समय विस्मय की कुछ एक तीव्र रेखाएं आ फिरीं। हाथ के पास का अजीत को पकड़ाते हुए वह बोला—'तीन टिकट ले लो।' अजीत के पास से चलते ही किरण ने पूछा—नाम हरीश बताया?'

'आजकल यही नाम है।"

'ओह!' साथ ही दोनों हंस पड़े।

'पर किरण भैया! टिकट की मनाही दे दो।"

'कारण?'

काम है।"

'ऐसा क्या काम है?'

'कुछ ऐसा ही है। साथ ही उसके चेहरे पर मुस्कराहट दौड़ गई।

'फिर भी? अपने मित्र की मुस्कराहट ने किरण को रहस्य में डाल दिया था। प्रश्न के साथ सन्देह की कुछ एक रेखाएं उसके चेहरे पर आ फिरीं।—'सतीश के लिये कुछ इन्तजाम करना है। एक आदमी की खोज में आया था। कम्बख्त मिला नहीं।"

उसी से काम चल सकेगा ?'
नही तो । खास अपना आदमी था सिर्फ इसलिए ।'
फिर कोई बात नही । काम चल जाएगा ।'
किस तरह ?

मैं चला दूगा । चलो । अजीत अब तक टिकट ले आया था । किरण ने अपने इस हरीश की बाह पकड उसे अपने आगे करना चाहा ।

'फिर तो बिलकुल नहीं किरण भैया ! अब तो तुम लोग भी नही जा सकोगे ।

'वाह यह खूब रही ।

अब खूब ही है किरण भैया ! किरण की मौजूदगी म हरीश बाबू का काम नहीं बिगड सकता ।

और य टिकट ?

मुझे दो । एक मिनट म अभी वापिस कर आता हू । यह कहते हुए इस हरीश ने अजीत क हाथ से टिकट ले काउन्टर' की ओर अपने पाव बढा दिए । जाते ही टिकट बाबू से सलाम की और टिकट उसे लौटा दिए । टिकट लौटाने क काम को तुरन्त हुआ देख किरण और अजीत ने समझ लिया कि उसका सिनमागृह क इस बाबू स मेलजोल है । अब तक किरण ने अजीत को इस हरीश की जरूरत भी सक्षप म समझा दी । तीनो हसते हुए मुख्य सडक की ओर चल दिये और ट्राम क इतजार म एक जगह आ खडे हुए ।

दिल्ली की इस नगरी म अजीत को अभी कई आश्चर्यों म स गुजरना था । ट्राम म भीड थी । चढने उतरने की जगह पर तो आदमी एक दूसरे स सटे खडे थे । अजीत ने देखा कि उसके पास खडे एक सज्जन

में एक भले घादमी ने एक रुपये की रेजगी मांगी। अजीत के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब वह शख्स रेजगी हाथ में आते ही चलती 'ट्राम से यह कहता हुआ सड़क पर उतर पड़ा— मेरे भूखे बाल-बच्चे दुआएं देंगे मालिक। आप इन नाचीज पैसों के लिए मोहताज ।' आखिरी शब्द अजीत को सुनाई नहीं दिए परन्तु आशय वह समझ गया। उसने देखा कि उसके पास खड़े हुए इस सज्जन के चेहरे की हवा ही अब तक उड़ चुकी है। वह अपनी सामाजिक सद्व्यावहारिकता के संकोच से समझा तब तक तो उसका याचक उसकी पहुंच के बाहर हो चुका था। उसकी निपट विवशता उसके चेहरे पर आ छाई और एक सूखी हंसी के साथ अपना दम घुटा गई। बोला—"क्या जमाना आया है! किस पर क्या कह कर विश्वास किया जाय!" पास खड़े हुए लोगों ने जिन्हें किस्सा मालूम था—"सच है' से अपनी अपनी सहानुभूति उसके अफसोस के प्रति प्रगट कर दी। जिन्हें मालूम नहीं था वे— क्या हुआ?' के प्रश्नों की बौछार से एक दूसरे को परेशान करने लगे। घटना की इस मंजिल पर आसपास खड़े आदमियों ने अपनी अपनी सतर्कता में अपनी जेबें संभालनी शुरू कर दी।

थोड़ी देर की 'ट्राम यात्रा के बाद हरीश के इशारे के साथ किरण व अजीत ट्राम' से सड़क पर उतर आए। अब तक सन्ध्या की अंधेरी घिर चुकी थी। सड़कों व दुकानों में बत्तियां जल गई थीं। एक तंग गली में हरीश अपने साथियों को अपने साथ ले चला। कोई साफ स्वच्छ गली नहीं थी बल्कि गन्दी और बदबूदार ही थी। कुछ कदम चलने के बाद ही सारंगी व तबले की आवाज अगल बगल के कोठों पर से आती हुई सुनाई दी। अब कभी कभी बदबू की जगह खुशबू का अनुभव भी वे करने लगे। ऊपर कोठे थे और नीचे दुकानें ज्यादातर पान की। आंख ऊपर उठाने से चमचमाती रोशनी में कोठे का प्रदर्शित सौन्दर्य देखा जा सकता था। किरण और अजीत अपने इस हरीश साथी के पीछे पीछे मौन धारण किए चले जा रहे थे। हरीश का ध्यान चलते समय पान की दुकानों पर हो रहा था। उसको इस

हरकत से दोनों ने यही अनुमान लगाया कि वह किसी की खोज में है ।

वे चलते गये । रोशनी से अन्धेरे में आये । इधर दूर तक कोई प्रकाश नहीं था । कुछ कदम चलने के बाद तो नाक पर कपड़ा रखे बिना सांस लेना तक मुश्किल हो गया । मगर व बढ़ते गये । दूर तक थोड़े थोड़े फासले से किरासीन की चिमनियां व दीपक टिमटिमा रहे थे । एक जगह रुक कर हरीश ने आवाज दी—'दादा यहां हैं ? —मगर कोई उत्तर न आया ।

'सुना नहीं ?' इस बार चार पांच की मिश्रित खिलखिलाहट जवाब में सुनाई दी । कोई साफ उत्तर नहीं ।

"सुना नहीं ? दादा यहां है या नहीं ?

सुन लिया । —स्वर औरत का था । असली प्रश्न का उत्तर इस तीसरी बार भी न आया । आई वही हंसी ।

एक मिनट— वह कह हरीश अन्धेरे में प्रवेश कर गया । किरण और अजीत अवाक से वहीं गली में खड़े रहे । उन्होंने सुना—'कौन कौन हैं ? आवाज हरीश की थी । मगर सब चुप थी ।

"सुना नहीं ?" मगर सब ने प्रश्न को अनसुना कर दिया ।

"यह समय शरारत का नहीं है !"

'तो ? —साथ ही फिर वही खिलखिलाहट । हरीश ने शायद किसी को पहचाना नहीं । उसने दो कदम पीछे हट कर जलती हुई चिमनी को उठाया । ज्योंही लेकर बढ़ा कि अन्धेरे में से फेंकी हुई एक चद्दर उस पर आ गिरी । अब तो बिल्कुल अन्धेरा था । हरीश ने जेब में से सलाई निकाली मगर ज्योंही उसे जलाया कि वह किसी की फूंक से बुझा दी गई । हरीश ने इस बुझाने वाली को पहचान कर पूछा— मानी ! और कौन कौन हैं ?

"कौन कौन चाहिए ?

मुझे तो दादा चाहिए।'

'इस समय ?'

'हां।"

देखा है कभी ?'

'असम्भव है ?'

जैसे तुम्हें मालूम नहीं। पर तु यह पेशा तुमने कब से अपना लिया ?'

'कौन सा ?'

'यही बाबू पकड़ने का।' किरण और अजीत उनका पारस्परिक मलाप सुन रहे थे। आज उन्हें मालूम हुआ कि वेश्याएं अपने ग्राहकों को बाबू शब्द से सम्बोधित करती हैं।

'क्या मतलब ? स्वर हरीश का था।

'मतलब तुम समझते हो। खैर—कहां ले जाओगे ?"

'किसे ?"

'और किसे ? जो खड़े हैं।

पगली ! पट नहीं मरा है क्या ? —उत्तर के साथ ही हरीश अन्धेरे में से सड़क पर निकल आया। अन्धेरे में से आवाज आई— बच्चू बाबू !'

मगर हरीश ने पुकार अनसुनी कर दी और वह किरण व अजीत से अपनी देरी के लिए माफी चाहता हुआ बिजलियों व दीपकों से दुर्गन्धित व आलोकित इसी गली के बीच और आगे बढ़ चला।

यहां से थोड़ी दूर और चलने के बाद वे एक शराब के ठेके पर

आए। यहा रास्ते की अपेक्षा कुछ रोनगी अधिक थी। बिन्नी जोरो पर चल रही थी। कुछ पी चुके थ, कुछ पी रहे थे कुछ का पीना बाकी था। हरीश अपने मित्रो को गली म ठहरा कर सीधा अन्दर चला गया। ठेकेदार स उसने पूछा— दादा यहा आए ?

जवाब मिला— जी।

कहा है ?

अभा अभी तो यही थे। —हरीश उत्तर सुन कर इधर उधर देखने लगा। पर उसके दादा उसे कही भी दिखाइ नही दिए। उसने देखा कि उसी की ओर एक परिचित मूर्ति धीरे धीरे बढ़ी चली आ रही है। यह नरस अपने हाथ की बोतल को पी चुका था पर तृष्णा अभी भरी नही मालूम होती थी। बोतल म की शेष बूदो को मुह से चाटता हुआ वह हरीश के पास चला आया। हरीश को यह सब देख कर तरस की एक हल्की हसी आ गई। इस नरस ने पास पहुचते ही ठेकेदार से खाली देकर एक भरी बोतल और मागी। हरीश ने हाथ म थाम कर इससे पूछा— दादा को देखा ?

'कौन दादा ?'

'दादा भी दो हैं नवाब साहब ?

दो नहीं दस हैं। सौ हैं। बीस हैं। हमारे ऊपर रोब दिखाते हो ? नहीं बनाते जाओ—

हरीश ने समझ लिया कि य नवाब साहब अभी शराब की नवाबी म मस्त हैं। उनसे अधिक बात इस समय उससे न करनी चाही और क्षण एक के लिए सहारा लेकर सोच म वहीं स्थित रह गया।

बोतल ! —मगर ठेकेदार ने बोतल नही दी।

सुना नहीं ? नवाब साहब मागते हैं। —शराबी बोला।

'पस लाइए, नवाब साहब।'

नवाब साहब की माग को अनसुनी कर दुकानदार ने कोई उत्तर न दिया। वह दूसरे ग्राहकों को यथावत् निवटाने लगा था। शराबी नवाब के लिए दुकानदार की यह हरकत असह्य थी। किसी अशरिफ आघात का क्रोध इस शराबी के चेहरे पर चढ आया मगर क्षण एक के बाद ही फिर दीनता आ घिरी। बोला— दे दे सेठ! एक बोतल और दे दे— मगर शराबों के सेठ ने इस बार भी माग अनसुनी कर दी। क्षण एक की प्रतीक्षा के बाद ही फिर वही गुस्सा इस नवाब के दीन चेहरे पर चढ़ आया। अपने इस आवेश में उसने अपनी जेब से चमडे का एक पर्स निकाला और काउंटर' पर पटक दिया। साथ ही बोला—'ले।"

दुकानदार अपनी बिक्री में व्यस्त था। उसने एक दृष्टि से 'पर्स' को देख कर वापिस अपनी दृष्टि उस पर से हटा ली। बोला— मुझे पर्स नहीं चाहिए नवाब साहब।

'आज यही है सेठ। बोतल दे दे।'

माग के साथ नवाब ने फिर दुकानदार के रुख का इन्तजार किया मगर वह उसके अनुकूल नहीं हुआ। वह यथावत् दूसरों को शराब बाट रहा था। और अधिक इस शराबी से सहन न बना। कर तो कुछ न सका परन्तु कहना शुरू किया—'इसी इस बदमाश को बच्चू बाबू! शान में नहीं है हरामी! दिल्ली के नवाब को एक बोतल शराब के लिए इन्कार करता है। तुम कह दो इससे— बच्चू बाबू! दोस्त मेरे! एक बोतल शराब का हुक्म कर दे।'

'मुझे भी यदि इन्कार कर दिया?—' हरीश ने दुकानदार की ओर देखते हुए कहा—प्रश्न ठेकेदार को अपना मान्य समझाने की गरज से शायद किया गया था।

'साले सेठ को शराब बेचना छुड़वा दूं। तुम हुक्म तो करो, —

बच्चू बाबू फिर देखूं इसकी ठेकेदारी !"

हरीश को हंसी आ गई। क्षण एक के विचार के बाद पूछा—
'दादा कहां है —मालूम है ?

'जरूर !

फिर चलो।'

और बोतल ?'

बोतल बाद में।

दे देगा।

कह दो।'—हरीश ने कह दिया ! हरीश नवाब को साथ लेकर दो कदम मुश्किल से चला था कि दुकानदार ने पीछे से आवाज दी—'नवाब साहब ! यह अपनी मारफत लेते जाइए ! दोनों ने घूम कर देखा तो दुकानदार के हाथ में वही बटुआ था जिसे काउन्टर पर पटक कर उसके बदले में इस नवाब ने शराब चाही थी। हरीश ने कहा—रख लो।'

'नहीं बच्चू बाबू ! दुकानदार ने जवाब दिया।

'क्यों ?"

पुलिस कचहरी की छूत कहीं लगी हो—मुझे डर लगता है बच्चू बाबू—' उत्तर के साथ ही पर्स को पकड़े दुकानदार इनकी ओर आ गया और नवाब साहब को उसकी चीज सुपुर्द कर दी।

अब चारों उसी गली में वापिस घूम चले। दूर तक अंधेरे में वही दीपक टिमटिमा रहे थे। वही बदबू आ रही थी। कुछ दूर तक नवाब जल्दी-जल्दी भाग चला। परन्तु जल्दी ही अपने पीछे चलते साथियों के साथ होकर उसने कहा—कभी इसी दिल्ली में हमारी धाक थी बच्चू बाबू ! नवाब का मतलब शायद अपने बुजुर्गों से था। उसने सुना—'ठीक

है। चलते चलो--"

हरीश ने हाथ के सहारे से फिर उसे आँगे आगे कर लिया। वह बोला--"आज इस हरामी की हिम्मतें भी यहा तक हो गई कि एक बोतल शराब के लिए इन्कार हो गया।' शराबी को शराब में भी अपना होश था। कुछ आगे बढ कर बोला-- खानदान की कद्र म बनिये-बक्काल क्या जान, बच्चू बाबू? पाजी को पता नहीं कि सरकार से पेन्शन पाता हू। कुछ भी सही सरकारी इज्जत तो है।' इस पेन्शन से मतलब इस दहलवी नवाब का शायद किसी गुजारे से था। सुन कर किरण को हसी आ गई। उसने कहा--'इज्जत तो उसी दिन चली गई जिस दिन नवाब के पीछे साहब लगना शुरू हो गया।" किरण के इस व्यग को नवाब समझा या नही, मालूम नही पर इसे सुनकर वह चौंक जरूर गया। उसके एकाएक ठहरने के मतलब को समझ कर हरीश न एक बार और हाथ के सहारे से उसे आगे बढा दिया।

कुछ ही क्षणो म चारो इस अधेरी गन्दी गली को पार कर प्रकाश मे आ गए। यहा कुछ एक कदम चल कर शराबी नवाब इन्हें एक कोठे पर चढा ले गया। इस बार किरण या अजीत पीछे न रहे। हरीश के इशारे के साथ वे भी उनके पीछे-पीछे ऊपर चढ गए अजीत अवश्य ही एक सकोचमयी दुबलता के साथ।

ऊपर कमरे मे दिन के समान चमचमाती रोशनी थी। सारगी व तबले का स्वर मिलन हो रहा था। राग रग की तैयारी थी कि चारों दरवाजे के बीच जा खडे हुए। अपने दादा को वहा बैठा देख हरीश न नवाब का शुक्रिया अदा किया और उसकी पीठ थपथपा कर उसे वापिस चले जाने की भी साथ ही हिदायत कर दी। उसके चले जाने पर दादा के आदेशपूर्ण इशारे पर वे तीनों साथी महफिल मे जा शामिल हुए और अदब से एक ओर बठ गए। इस समय कि [illegible] व अजीत के चेहरों पर सभ्य

जगत की भावमयी विकृत रेखाए थी।

स्वरकार न अपनी सारगी सम्भाली। अपनी आलाप म विहाग का एक रूप सा उसने खडा कर दिया। रागिनी अपनी मयादा म स्वछन्द हो विचरने लगी। उसके सौदय का सुखमय श्रवण श्रोतागण अभी कर ही रहे थे कि तबल की थाप ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लिया। इसी क्षण सुन्दरी शोभा उठ खडी हुई। अगूरी साडी म इसका योवन का सा सौंदय इस समय दखत ही बनता था। जादूभरी मस्कान मुह पर थी। आखो की हल्की नीलिमा म एक अपूणनीय आकषण था। शरीर सौष्ठव को देकर उसे सहज ही म उसके निमाता की निर्माण कला का एक नमूना कहा जा सकता था। सबकी आखें मद भरे योवन और स्वर्गीय सौन्दय की इस अनुपम मूर्ति पर जा लगी। इस सुन्दरी का स्वरूप और भी अधिक आभा पा गया था। एक कलाकार की कला मूर्ति की तरह इस समय वह खडी थी।

स्वरकार ने अपनी रागिनी को एक पथ पकडा दिया। एक चाल से वह उस पथ पर चलने लगी। श्रोताओ के हृदय उसक साथ हो लिए। उन्होने देखा कि शोभा उसी तरह निश्चल भाव म वही खडी है। वे देखत रहे। उन्होने स्वर सरिता को मन्द गति स बहते सुना। स्वर मूर्ति म जीवन बह चला था। सौदय मूर्ति म उसी लहर का बहाव वे दखना चाहते थे कि सम क साथ ही शोभा का पाव बज उठा। सौन्दय की मूर्ति शोभा अपना निश्चलता का छोड स्वर की सहचरी हो चली। उसक पाव मद गति से स्वर लहरी के साथ हो गए।

स्वरो की विभिन्नता के साथ शोभा की भावमयी चेष्टाए अपना अपना रूप बदलती गई और थोडी ही देर म ऐसा मालूम होन लगा कि व किसी जीवन कहानी का एक अङ्ग हैं। उसके भावो म मानव-जीवन की आकाक्षाओ का एक चित्रमय इतिहास था जो स्वप्नों क सुख म गुप्त होकर

मृत्यु के दद म खत्म हो जाना था। शोभा के इस नत्य म आरम्भ से लेकर अन्त तक जीवन की चचा थी और ऐसा प्रतीत होता था कि यह सब किसी सुलझे हुए दाशनिक की कलाकृति है जो उसने अपने उपहार मे इस शिष्या को स्नेहवश सिखा दी थी। इस जीवन नत्य म मानव एक असहाय प्राणी की तरह चित्रित किया गया था जिसका एकमात्र अभिप्राय जम क आरम्भ से मृत्यु के आगमन तक जीवन धारण करना भर था। लम्बे जीवन का बिता सकने की कोशिश म इस नत्यकार के दृष्टिकोण के मुताबिक मानव न कला आदि कार्यों की शरण ली भी परन्तु उनम वह खा गया। अपने मनोरञ्जन की कोशिश मे उसने लक्ष्यो आदर्शों सिद्धान्तो व्यवहारो व मतो की एक सृष्टि रची और उन्ही को अपनी जीवन साधना मान वह ससार पथ पर चल पडा। मनोरञ्जन तो हुआ पर साधना सफल न हुई। ज्यो ज्यो वह उसकी प्राप्ति के लिए उसके पीछे दौडता गया वह दूर आगे भागती गई। मानव व उसके लक्ष्य की साधक और साधना की यह दौड अनन्त थी। आखिर मानव थक गया। उसकी आखिरी निराशा मृत्यु आई और तब उसे मालूम हुआ कि जीवन एक खेल है खेल के अलावा और कुछ नहीं है—सिफ खेल ही है। अब उसकी निराशा मे दद था और दद म निराशा। काश, वह उसे पहले समझता।

जिस समय सुदरी शोभा ने द्रुतलय की चरम सीमा पर इस जीवन नत्य को समाप्त किया उस समय उसके मुख पर मृत्यु की भया वनी भय मुद्रा थी। देखकर दशक दङ्ग रह गए। करुणा के करुण भाव उनके चेहरों पर आ छाए मानों उन्हें मालूम हो रहा था कि सौन्दय मयी शोभा का भी एक दिन यही अन्त होनेवाला है। किरण व अजीत के चहरों पर भी कला के वातावरण की भीषण छाया आच्छादित थी। व शोभा की इस आखिरी मुद्रा का गम्भीरता के साथ विचार कर रहे थे कि उन्ह सुनाई दिया— हो गया शोभा। वास्तव म अच्छा हुआ।'

शांति को भंग करने वाला यह पुरुष हरीश का वही दादा था जिसकी खोज में अजीत व किरण अपने साथी हरीश के साथ यहां तक आए थे। उन्होंने देखा कि इस पुरुष के मुंह पर उसकी स्वाभाविक सूखी मुस्कान थी और इसी बीच वह अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ था। सबने देखा कि शोभा उठकर इस अधेड़ पुरुष के पास पहुँच गई है और आशीर्वाद के लिए उसके आगे अपना मस्तक नीचा कर दिया है। अधेड़ पुरुष ने स्नेह में अपना एक हाथ शोभा के झुके हुए सिर पर रख दिया।

अब तक हरीश, किरण व अजीत भी अपने अपने स्थान से उठ चुके थे। वे उठकर आगे आए तो उन्होंने देखा कि दादा की आँखों में आंसू छलक आए हैं और वह उन्हें अपने दूसरे हाथ से पोंछ रहा है। किरण और अजीत के पांव क्षण एक के लिए आश्चर्य में वहीं रुक गए। उन्होंने देखा कि दादा का ध्यान, आंखें, चेष्टाएं सब शून्य में कहीं केंद्रित हैं। उसका एक हाथ अभी स्नेहवत्सल शोभा पर यथावत् पड़ा था। वह भी उसी तरह नतमस्तक हुई मूर्ति-सी खड़ी थी। वह बोला— जीवन एक खेल है शोभा! हम जो खेल समझता है उसका सुख साथ कभी नहीं छोड़ते। दुख कभी दुख नहीं देते। उसके लिए जीवन में पाप हैं ही नहीं, सारे पुण्य हैं। और आगे इस अवसर पर इस अधेड़ पुरुष से अधिक बोलते न बना। स्वर में करुणा की आर्द्रता आ गई थी। रुक कर शब्द निकले— 'ईश्वर करे तुम्हारी सालगिरह की शुरुआत शुभ हो।'—साथ ही उसने अपना हाथ उठा लिया। शोभा ने आंखें ऊपर कीं तब तक उसके पूज्य द्वार की ओर अपने पांव बढ़ा चुके थे। तीनों साथी पीछे पीछे साथ हो लिए। अजीत और किरण के चेहरे की विचारभरी रेखाएं अब दूर हो चुकी थीं। निर्मल आनन्द का एक सन्तोष उन पर इस समय खिल रहा था।

चारों कोठे से उतर कर सड़क पर आ गए। अब तक वह पुरुष अपनी भावुकता से सम्भल चुका था। अजीत और किरण दोनों की सहानुभूति

को जोती जा चुकी थी। कुछ कदम चलने के बाद हरीश ने अपने साथियों का परिचय अपने इस दादा को दिया। हरीश के साथी उसके व्यवहार से समझ गए कि अपने परिचितों में इस पुरुष का एक अपनापन है। उनके हृदयों में भी इस पुरुष मूर्ति के प्रति सम्मान की भावनाएं जागृत हो उठीं। कोठे पर की घटना ने तो उन्हें एक प्रकार से उसका भक्त ही बना दिया था। उसके व्यक्तित्व पर वे मुग्ध थे और मुग्ध हुए ही उसके संग चले जा रहे थे।

समाज की इस पापनगरी में चलते हुए इन चारों पुरुषों पर समाज की भेद भरी सभ्यता का इस समय कोई असर नहीं था। उनके मस्तक उठे हुए थे और आंखों में ओज था। उनके चेहरों पर किसी तरह की दौर्बल्य रेखा नहीं थी न ही किसी तरह के सामाजिक भय का आभास ही नजर आता था। मालूम ऐसा होता था कि एक साधारण सामाजिक प्राणी के स्तर से ये राहगीर बहुत दूर हैं। ऊंचे उठे हुए या नीचे गिरे हुए अन्ततः यह तो अलग अलग दृष्टिकोण की ही बात तो है।

अन्धेरे में बहुत दूर तक ये सब साथ साथ चले। किरण और अजीत की दिलचस्पी इस अधेड़ पुरुष में इस कदर बढ़ चली थी कि वे वार्तालाप से जल्दी से जल्दी इसके सम्पर्क में आने के लिए व्यग्र थे। अधेड़ पुरुष अपनी मस्ती में झूमता हुआ जल्दी जल्दी आगे बढ़ रहा था। बीच बीच में अन्धेरे से उत्पन्न हुई अपने साथ चलने वालों की कठिनाइयों को कम करने के लिए उसके मुंह से व्यवस्था के प्रति व्यंग की कुछ बातें निकल पड़ती थीं। दादा को सब ने यह कहते हुए भी सुना कि राजधानी दिल्ली की ये गलियां शासन और समाज की सुव्यवस्था व संस्कृति के प्रदर्शन-केन्द्र हैं। किरण और अजीत के लिए इस पुरुष का रहस्य भरा जीवन बराबर और भी रहस्यमय होता जा रहा था। इस पथ यात्रा में उन्हें एक विचित्र जीवन की विविध झांकियों का आभास मिला।

इस अंधेरी गली को पार करने के बाद वे एक पुराने रास्ते पर आए। यही घुमाव पर दादा का मकान था। ताला खोल कर वे अन्दर गए। खूँटी पर लटकती एक चाबी को उतार कर दादा ने हरीश को पकड़ा दी और साथ ही ऊपर चलने का आदेश भी कर दिया। शायद इसलिए कि नीचे की बत्ती रास्ता को और ऊपर के तल्ले पर म्युनिसिपैलिटी के एक प्रकाश स्तम्भ से प्रकाश आ रहा था। हरीश ने ऊपर के कमरे की बत्ती घर के एक जानकार व्यक्ति की तरह पहुँच कर जला ली।

अजीत और किरण के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने इस कमरे की कलापूर्ण सजावट को देखा। सारा आधुनिक संपन्नता का ठाठ था। दरी टेबल कुर्सियाँ तस्वीरें सब अपनी-अपनी जगह शोभित थे। 'दादा' के फकीराना ठाठ देखते हुए यह अमीरी दोनों को बेमजूँ सी *मालूम हुई। नजर भर कमरे के ठाठ को देखने के बाद दोनों दोस्त—किरण* और अजीत आपस में चौनजर हुए और एक मौन भाषा में एक ने दूसरे को अपना अभिप्राय समझा दिया। कुछ एक क्षण की विचारधारा के बाद किरण ने हरीश से पूछा— 'आजकल क्या होता है ?'

'क्या होता है ?' साथ ही उसने हँस दिया। हँसी रुकने के बाद मुस्कराता हुआ बोला— सेल्फ हेल्प।'

क्या मतलब ?

मगर हरीश ने क्षण एक के लिए किरण की आँखों में देख कर उत्तर में प्रश्न किया—'इतनी अंग्रेजी पढ़ कर भी मतलब नहीं समझते ?

'इतनी अंग्रेजी नहीं पढ़ी।'

तुमने किरण भया ?"

हाँ।'

'और आपने ? —हरीश ने अजीत की ओर इशारा करके

पूछा।

आपने भी नहीं ?"

क्यों भाइ साहब ?' प्रश्न अजीत से था।

उत्तर मिला—'जी नहीं।'

'और दाल का स्वाद ?'—यह प्रश्न भी अजीत को ही था, मगर, वह समझा नहीं। उसने किरण की ओर देखा। किरण ने समझ कर उत्तर दिया—'बिलकुल नहीं।"

'ओह! फिर आपस तो आशा ही नहीं करनी चाहिए।'—इतना कह हरीश ने अपनी स्वाभाविक हंसी एक बार और हंस दी। अजीत के लिए इस सवाद के शब्द नए नहीं थे परन्तु फिर भी उनकी भेद भरी भाषा का वह नहीं समझ पाया। उसने देखा कि किरण कमरे में टगे चित्रों को देख रहा है व हरीश अपनी किसी विचारधारा म हाथों को पीछे बाधे इधर उधर टहल रहा है। 'दादा' अब तक नीचे से ऊपर नहीं आए थे। वह भी मेज के सहारे कमरे में पड़ी एक कुर्सी पर एक विचार मुद्रा मे बैठ गया। कमरे म कुछ क्षण के लिए शांति छा गई।

किरण भैया से आपका परिचय कब से है ?—कमरे की शांति को भग करते हुए हरीश न पूछा।

करीब साल भर से।'

"कहां की मुलाकात है।'

'कलकत्ते की।'

'साथ पढ़े हैं ?'

'नहीं तो।'—उत्तर के साथ ही अजीत को थोड़ी सी हंसी भी आ गई। उसने देखा कि उसके उत्तर के साथ ही हरीश की आंखें किरण की ओर घूम गई हैं। किरण भी इन दोनो के वार्तालाप को बड़ा बड़ा

सुन रहा था। जब और आगे प्रश्न मे देरी हुई, तो उसने भी नजर घुमाई। अजीत और हरीश दोनो ही उसकी ओर अपनी अपनी प्रश्नभरी मुस्कराहट के साथ देख रहे थे। वह दोनो की समस्या को समझ गया, बोला—'चुप क्यो हो गए ?

'तुम्ही मदद कर दो।' हरीश ने कहा। किरण मुस्कराता हुआ दोनों के बीच म आ गया। अजीत की ओर इशारे करके उसने हरीश से कहा—'हमन एक अर्से तक कलकत्ते म नौकरी के लिए 'वान्टेड' के कालम साथ साथ देखे हैं और यही हमारी मुलाकात है। उसक बाद आज ही मुझे आपके साक्षात्कार व सत्कार का मौका मिला था।'—इसके बाद हरीश की ओर इशारा करके उसने अजीत को कहा—'हरीश उफ नारायण उफ अमर उफ केशव उफ बच्चू उफ न जाने और भी कितने क्या! यही आपका परिचय है अजीत बाबू।'

'जाने भी दो!' हरीश ने कहा।

'वाह! जाने किस तरह दू ? आप मेरे जेल के साथी हैं। अजीत बाबू सात माह म जेल म कई बार हम स्वतत्र कोठरियो के इस्तेमाल का सौभाग्य साथ साथ मिला था। वहा स जुदा होने क बाद आज ही आपके भी दर्शन हुए हैं।

इतना कह एक अर्थभरी मुस्कराहट के साथ अपने दोनो दोस्तों की आखो म क्षण एक मुस्कराते मौन के बाद वह बोला— किरण आख मिचौनी नही खेलना—दोस्तो के साथ तो बिल्कुल नही। इतना कह इस परिचय के बाद वह वापिस उसी तस्वीर के सामने जा खड़ा हुआ जिसे देखता हुआ वह आया था। उसके चल जाने क बाद हरीश व अजीत फिर एक बार पारस्परिक चर्चा म व्यस्त हो गए। अब इनकी चर्चा के बीच कोई आड़ नही थी।

हरीश ने पूछा—'आप कब तक बेकार रहे ?

"अभी तक बेकार ही हूं।"

कब से ?

'हमेशा से।'

'कोई काम नहीं किया ?'

'किया क्यों नहीं ? —उत्तर के साथ ही उसे फिर हंसी आ गई। हरीश ने पूछा—'वही तो पूछता हूं।'

'पहले पढ़ने का किया और उसके बाद नौकरी तलाश करने का।"

"नौकरी कभी की नहीं ?'

'कभी मिली ही नहीं।'

'कैसी भी ?'

'बिल्कुल नहीं। —मुस्कराकर साथ ही अफसोस में अजीत ने अपना सर भी हिला दिया। उसकी इस हंसी से उसकी निराशा अथवा उसकी चाह स्पष्ट थी। दोनों कुछ एक क्षण के लिए दर्दभरी नीरवता में चुप रहे। उसके बाद हरीश ने पूछा—'सल्फ हेल्प क्यों नहीं शुरू कर दिया ?'' साथ ही वह थोड़ा सा हंस भी पड़ा। उसकी यह हंसी खुशी की नहीं थी बल्कि व्यवस्था व समाज के प्रति विवशता का एक दर्द भरा व्यंग था। सुन कर किरण बोल उठा—"इसकी शुरुआत तुम करा दो।"

और तुम क्यों नहीं ?'

"इसलिए कि इस महा मन्त्र की साधना मैंने कभी की नहीं। दीक्षा हमेशा किसी सद्गुरु से ही ली जानी चाहिए।

"इसमें साधना की आवश्यकता नहीं है किरण भैया। यह ज्ञान का विषय है। समझ लेना भर साधक की सफलता के लिए काफी है।"—

हरीश के 'सत्फ हेल्प' के अवचित व सरल सिद्धान्त ने पारस्परिक बात चीत में शब्दों में तो इस समय अवश्य ही एक दार्शनिक सिद्धान्त का महत्व पा लिया था। सुनकर किरण बोला— फिर देर क्या है गुरुदेव ? अपना प्रवचन शुरू कीजिए। दो शिष्य तो हाजिर हैं ही। दोनों सुपात्र।'

इसमें तो कोई शक नहीं।" साथ ही वह एक अजब किस्म की हंसी, शायद अपने को हल्का करने के लिए हंस पड़ा।

'कोई बहुत बड़ा खजाना मिल गया है ?' प्रवेश करते हुए दादा ने पूछा।

वास्तव में ही बहुत बड़ा, दादा।

"यानी ?'

"दो सुपात्र शिष्य।'

'किस बात के ?'

'सेल्फ हेल्प सीखने के लिए।"

'ओह !'—दादा को सुनकर साथ ही हंसी आ गई। अपने हाथ की चीज को एक ओर रखते हुए उन्होंने कहना शुरू किया— हरीश अपने युग का आचार्य है किरण बाबू। इसने इतनी अंग्रेजी तो नहीं पढ़ी, फिर भी अंग्रेजी का है यह 'प्रोफेसर'। इस युग में भारतीय शिक्षण संस्थाओं को अवश्य यह चाहिए कि हरीश के रिसर्च से फायदा उठाकर अपने स्नातकों को बेकारी से बचा लें।'—साथ ही दादा हंस पड़े। उनकी इस हंसी में कैसी विचित्र व्यंग का भाव था। सुनकर तीनों को हंसी आ गई। हंसी रुकते ही हरीश की आवाज सुनाई दी।—दादा—' इस अंग्रेजी युग में अंग्रेजों से ही काम लिया जाना चाहिए दादा। अंग्रेजों का एक बहुत बड़ा सिद्धान्त है—'सेल्फ हेल्प इज दी बेस्ट हेल्प' यानी स्वयं सहायता ही सबसे अच्छी सहायता है। इस सिद्धान्त के मुताबिक अपने आप अपने लिए जो

कुछ भी कर लिया जाय वह सबसे अच्छा है। दुनिया में जो कुछ भी होता है वह सबसे अच्छे के लिए ही होता है। अंग्रेजी में भी कहा है— एवरी थिंग इज फार दी बेस्ट। इसीलिए इस अंग्रेजी राज्य में किसी के कुछ बनने की—किसी के कोई काम करने की बाबत कोई रोक नहीं। बुद्धि के बल जो कुछ भी कर लिया जाय अच्छा है। गले में रबड़ की नली डाल कर डाक्टर बन जाओ तो कोई पूछता नहीं बड़ा-सा 'साईन बोर्ड' लगा कर वैद्य बन जाओ तो किसी की रोक नहीं। मास्टर बन जाओ तो लोग मास्टर जी कहने लगेंगे सेठ बन जाओ तो सेठजी कहने लगेंगे। सिर्फ बनने की हिम्मत चाहिए। वर्तमान भारत की समस्त विशालता में—इसकी तमाम लम्बाई चौड़ाई में आजकल कोई कुछ और कोई कुछ इसीलिए बना हुआ है। जो कुछ भी नहीं बन सका, वही बेकार है दादा।'

'सुन लिया, अजीत बाबू!" मुस्कराकर किरण ने कहा।

सुन लिया, मास्टर साहब!' उसी मुस्कराहट के साथ जवाब आया। उत्तर की उपयुक्तता पर साथ ही सब हंस भी पड़े। हंसी रुकने के बाद हरीश बोला— सच जानिए अजीत बाबू! आजकल की दुनिया में जीवित रहने के लिए आजकल की सभ्यता का ही अनुकरण करना चाहिए। हम देखते हैं कि कितने बहुधा लोग क्या क्या नहीं बने हुए हैं। लीडर मिनिस्टर, लेजिस्लेटर, डाईरेक्टर प्रोप्राईटर, मैनेजर एडीटर आडिटर राईटर ब्रोकर या ट्रैक्टर, सोल एजेन्ट कमीशन एजेन्ट, आर्टिस्ट सभी तो कोई बन सकता है।

'यह सब तो समझ में आ लिया। अब यह बताइए कि आप क्या बने हुए हैं? हम तो मालूम हो जाय कि हमें क्या क्या करना है अपने हाथ की घड़ी देखते हुए किरण ने पूछा। प्रश्न में ही उत्तर आया—

मैं?

'जी। आप स्वयं।'

मिस्टर हरीश! —साथ ही उसके मुंह पर मुस्कराहट दौड़ गई। अपने प्रश्नकर्त्ता किरण की ओर अपनी अर्थभरी इस मुस्कराहट के साथ देखते हुए वह बोला— मिस्टर हरीश आजकल एक 'सिनेमा कम्पनी' के प्रोप्राइटर हैं।'

'सिनेमा कम्पनी?

"और नहीं तो क्या। मनुष्य के विचार हमेशा उच्च रहने चाहिए। साथ ही वह फिर मुस्करा उठा। किरण ने पूछा—'और वह कम्पनी?'

'तुम्हें विश्वास नहीं होगा किरण भैया। साथ ही वह किरण के पास कदम बढ़ा कर खड़ा हो गया। बांह पकड़ कर बोला—' आइए— किरण साथ हो लिया। अजीत की ओर मुखातिब होकर हरीश ने पूछा— आप भी आइएगा भाई साहब?'

जरूर।' —साथ ही अजीत भी उठ बैठा।

और आप दादा?'

मैं देख चुका हूं।

हरीश इन दोनों मित्रों को नीचे सड़क पर ले गया। वहां मकान से कुछ दूर खड़े होकर हरीश ने अंगुली से एक ऊंचे टंगे बड़े साइन-बोर्ड' की ओर इशारा कर दिया। सड़क को देखते हुए बड़े बड़े अक्षरों में 'कला चित्र' इस पर लिखा हुआ था। इसे दिखाकर दूसरी सड़क की ओर वह उन्हें ले गया। मकान के इस हिस्से पर भी उतना ही बड़ा 'बोर्ड लगा हुआ था। इस पर अंग्रेजी में— दी आर्ट पिक्चर्स लिखा हुआ था। इन्हें देखकर किरण बोला— 'बस!' जवाब आया— बस कैसे? अब अन्दर तशरीफ ले चलिए।

वे अन्दर आए। किरण और अजीत के चेहरे पर इस समय विस्मय की तीव्र रेखाए थी। अन्दर पहुचते ही मेज की दराज म से हरीश ने दो एक दैनिक पत्र कुछ छपे हुए फार्म कुछ बिल और कुछ तार मनीआडर व एक्नोलजमन्ट क फार्म्स निकाले और उन्हें मेज पर अपने मित्रों के सामन रख दिया। दनिको म छपे इस कम्पनी के आवश्यक्ता विज्ञापनों की ओर हरीश ने उन दोनो का ध्यान आकर्षित किया। पढकर किरण न पूछा— कल के लिए ही तो है?

कल क लिए ही।

यदि कोई नहीं आया?

यह असम्भव है किरण भया! यह असम्भव है। तुम छप हुए शब्दों की फिर कीमत ही नहीं जानते। नायकीनो और जरूरतमन्दों के लिए जो जादू छपी हुई इन पत्तियों म है वह शायद और किसी म नहीं। तुमने व अजीत बाबू न विज्ञापन तो बहुत देखे हैं परन्तु विज्ञापकों को बहुत नहीं देखा।

पर इसी से तो कम्पनी नहीं खुल जायगी हरीश बाबू! क्यों दादा? किरण न दादा की सम्मति प्राप्त करने के लिए साथ ही उन से भी प्रश्न कर दिया। दादा कमरे के एक कोने म इस समय कुछ पत्र समेट रहे थे। हरीश किरण क इस प्रश्न पर हस पड़ा। उसे शायद इस अवसर पर यह अभिमान हो आया था कि उसकी योजना की रहस्यमयता इस कदर पूर्ण है कि उसे आसानी से किरण की योग्यता का आदमी भी एकाएक नहीं समझ सकता। उसकी यह हसी इसी स्वाभिमान का एक प्रदर्शन मात्र थी। जब तक हरीश अपने उक्त अभिमान की खुशी म हस रहा था दादा ने अपनी सम्मति जाहिर कर दी। बोले— हरीश के पास हर प्रश्न का उत्तर है किरण बाबू! उसक बाद हरीश बोला— कम्पनी तो खुल गई किरण बाबू!

इसी से ?'

"और नही तो क्या ?'

और फिल्म वगरह ?'

वे किसे बनाते हैं ?'

'नही बनाते ?' अजीत ने आश्चय में पूछा ।

जवाब आया—'बिल्कुल नहीं ।'

फिर फायदा ?'

'नुक्सान भी कुछ नहीं ।'

कुछ क्षण के लिए चुप्पी छा गई । हरीश उस भग करता हुआ बोला—'मिस्टर हरीश का राजपूताने के एक रईस से परिचय है किरण बाबू । वह इसे एक फिल्म कम्पनी के मालिक की हैसियत से इधर कुछ दिनों स जानता है । वह यह भी जानता है कि उसके दोस्त हरीश की फिल्म कम्पनी का दफ्तर दिल्ली म है । उस रईस के विश्वास को कायम रखने के लिए तुम्हारे इस हरीश ने यह फिल्मी दुनिया बसाई है । कल लगभग दोपहर वह यहा ठहरेगा—यह रहा उसका तार । साथ ही दराज म से निकाल कर एक तार उसने मेज पर रख दिया । बोला—मेरे विज्ञापनो की माग का सहारा लेकर आए हुए कलाकार गा बजा कर मेरे और मेरी कम्पनी के नाम से मेरे मेहमान का स्वागत करेंगे । उसके चले जाने के बाद इस दुनिया म प्रलय आयगी और तुरत यह खेल बन्द कर दिया जायगा ।'

इस वक्तव्य के आरम्भ मे अजीत और किरण ने इस विपथगामी के चेहरे पर मुस्कराहट की कुछ रेखाओ को देखा था परन्तु ज्यो ज्यों वक्तव्य बढ़ता गया उन्होने महसूस किया कि उसके चेहरे पर की रेखाए

गायब हो चली हैं और उनकी जगह किसी अस्पष्ट दर्द की विकृत रेखाओं ने अपना अखाड़ा आ जमाया है। बहुत सम्भव है कि यह अन्तर हरीश की वास्तविक व्यथा की एक छाया हो। इस वक्तव्य के बीच वह कुछ गम्भीर हो चला था। परन्तु उसके समाप्त होते ही फिर उसने अपनी वही छलपूर्ण मुस्कराहट अपने चेहरे पर आ फिराई और मुस्कराता हुआ बोला—'हरीश के इस रईसी अभिनय में संगीत निर्देशक का काम करेंगे मास्टर किरण व मैनेजर के पद की शोभा बढ़ाएंगे मिस्टर अजीत।' सुनकर किरण व अजीत दोनों के चेहरों पर किसी अज्ञात भय की काली छाया आ छाई। अजीत पर कुछ अधिक। हरीश ने इस छाया को देखा या नहीं, नहीं कहा जा सकता कारण वह तो अपने को हल्का करने के लिए खड़ा खिलखिला रहा था। सुनकर किरण और अजीत दोनों ही किसी गहरे विचार में गोते खाने लगे। उन्होंने एक दूसरे की ओर एक भावमयी दृष्टि से देखा और फिर दोनों ही हरीश की हरकतों की ओर देखने लगे। अब तक अपने हाथों को पीठ पर बांधे वह अपने दादा की अलमारी के पास पहुँच गया था। कुछ एक क्षण की चुप्पी के बाद किरण ने पूछा— यह सब कब तक चलेगा हरीश बाबू?

'कब तक? जब तक जीवन चलेगा। जब तक दुनियां चलेगी, जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे।'

'किसी को मालूम हो गया फिर?'

'किसी को मालूम तो होना ही है, किरण भया। हरेक को मालूम नहीं होना चाहिए।

'शोहरत फली और फैली। फिर इसे रोकना आसान नहीं।' हरीश को फिर हँसी आ गई। वह मुस्कराता हुआ बोला— ऐसे वक्त उस स्थान को छोड़ देना चाहिए। दुनियां तो बहुत बड़ी है किरण बाबू! कुछ क्षण रुककर उसने कहा—जीवन एक संघर्ष है किरण बाबू। अवस्था के

समाज ने इसे और भी अधिक मयमय बना दिया है। जिन योद्धाओं के हथियार समाज और व्यवस्था ने उनसे छीन लिए उन्हें भी अपने अस्तित्व के लिए तो कुछ न कुछ करना ही पड़ता है। हथियारों के लुटे हुए अपनी जीवन रक्षा की कोशिश में अपने लुटेरों के खिलाफ इस ससार क्षेत्र में एक मोर्चा बनाते हैं—विविध तरह की अपनी रक्षा पद्धतिया बाधते हैं। तुम्हारा हरीन भी ससार क्षेत्र का एक योद्धा है जिसके हथियार उसके बचपन में ही उससे छीन लिए गए थे। एक अर्से की रक्षा आक्रमण और आक्रमण रक्षा के अभ्यास ने उसे आज इस कदर योग्य बना दिया है कि ससार की इस युद्धभूमि में अपने शत्रुओं के खिलाफ चाहे जहा आक्रमण और चाहे जहा रक्षा का सग्राम वह चालू रख सकता है। अपने शत्रुओं की किलेबन्दी में वह हो आया है। उनकी व्यूह रचना के तमाम भेद उसे मालूम हैं। उन्हें जानते उनके जाल में फस मरने के बहुत कम स्थान उनके लिए शेष रह गए हैं। जीवन के इस मरहले पर उसके पास अपनी एक 'स्ट्रेटेजी है—अपनी ही प्लेन्स हैं और अपने ही सीक्रेट वेपन। वह जानता है, कि सभ्यता सग्राम में सस्कृति का सत्कार नहीं करती फिर अपने जीवन सग्राम में हरीन ही उसे क्या अपनाये ?—इसके बाद अपनी भावुकता व गाभीर्य पर मुस्कराहट का एक दम रखते हुए वह बोला—हरीन की रहस्यमयता का समझना उसके शत्रुओं के लिए आसान नहीं है किरण बाबू !'

'तुम्हें अपने ही जैसे और आदमियों को अपने घर से निराश लौटते देख दुख नहीं होता जब कि तुम यह जानते हो कि वे अपनी मजबूरी के कारण किसी आशा के आसरे तुम्हारे यहा आए हैं।' प्रश्न में किरण की मानवी भावुकता जागृत हो उठी थी।

बिल्कुल नहीं।' —हरीन के उत्तर में गाभीर्य था।

'झूठ सर्वथा असत्य किरण बाबू' हरीन के उत्तर को सुनकर दास बोल पड़ा। हरीन इस समय हस रहा था।

उन्होंने देखा कि दादा अपने कमरे में टहल रहे हैं। दादा गुरु को द्वार खोलने के लिए कार्यालय के इस कमरे से बाहर चले गए हैं। वे वापिस ऊपर आए उस समय उनके साथ वही सुन्दरी पाहुनी थी जिसके जीवन-नाद ने करीब दो तीन घण्टे पहले उन्हें प्रभावित किया था। उन्होंने देखा कि सिवाय दादा के उस समय उनके साथ और कोई नहीं था और एक निर्भय मूर्ति की तरह स्वच्छन्दता से वह इस कमरे के बीच तक बढ़ आई थी। आकर वह एक क्षण के लिए खड़ी हो गई। किरण और अजीत का हाथ जोड़ शिष्टोचित रूप से उसने अभिवादन किया और फिर हरीश की ओर देख करके मुस्कराते हुए अपने हाथ का सेंटो पत्र उसकी ओर फेंक दिया। हरीश ने इस पत्र को पकड़ते हुए पूछा— बड़ी जल्दी चली आईं ?

'हां।'—हरीश ने उसके संक्षिप्त उत्तर व उसके बात की खुशी के आशय को समझ कर अपने उन दोनों बैठे हुए मित्रों का परिचय इस रमणी को दे दिया। जब उसे मालूम हुआ कि किरण बाबू मिस्टर हरीश के जेल के साथी हैं वह एक मधभरी मुस्कराहट के साथ हंस पड़ी। साथ ही दादा ने पूछा—'शोभा! सच कहना! हरीश अपनी सफलता पर हंसता है या आंसू बहाता है?'

प्रश्न सुनकर शोभा ने दादा, हरीश और उसके साथियों की तरफ एक एक करके एक अध्ययन की मधभरी मुस्कराहट के साथ देखा और फिर अपने उत्तर के भाव को एक हास्यमयी हरकत के साथ बिना बोले ही सबके आगे जाहिर कर दिया।

'क्यों?'—स्वर दादा का था।

'इसने तो कुछ कहा नहीं'—वाणी हरीश की थी।

बोलो, शोभा ! अपनी सफलता के बाद हरीश हँसता है या रोता है ?' दादा ने पूछा ।

'दोनों ।' शोभा ने हरीश की आँखों में एक मुस्कराहट के साथ देखते हुए उत्तर दिया । साथ ही उसकी हथेलियाँ अपनी हँसी को रोकने की कोशिश में इस अवसर पर उसके मुख पर चली गई ।

'बस ?' शब्द में दादा की विजय दुदुंभी बज उठी ।

'आप ?' सुन्दरी शोभा की ओर इशारा करके अजीत ने हरीश से पूछा ।

"इतनी जल्दी भूल गए ?'

'नहीं वैसे तो पहचानता हूँ ।'

'फिर बात है । क्यों, शोभा ?" —साथ ही हरीश अजीत के सहानुचित संकोच पर हँस पड़ा । शोभा चुप थी ।

"शोभा देवी ! अजीत बाबू आपके विषय में कुछ जानना चाहते हैं ।' किरण ने अजीत को अपनी मानसिक समस्या के सङ्कीर्ण कोने से बाहर करते हुए पूछा ।

शोभा बोली— आप बता दीजिए ।"

आपके मुँह से कुछ और मीठा मालूम होगा ।

ये किरण भैया हैं । इन्हें बस मन समझ बैठना ।"—हरीश ने शोभा को सचेत करते हुए कहा । वार्ता की इस मञ्जिल पर शोभा के पाँव अपनी जगह से एक ओर भाग बढ़ चले थे । तन्मय हुई किसी विचारधारा में, वह अपनी सामने की जमीन पर पाँव जमा रही थी कि ठहर कर बोली— हरीश की सहचरी शोभा एक बड़ी ही योग्य

है जसी आपने उसे देखी है। वह एक वेश्या है अजीत बाबू ! कुछ मीठा लगा किरण बाबू ? आखिरी प्रश्न म कुछ गम्भीरता थी।

नहीं।' —उत्तर आया।

क्यों ? आप चुप है ?

'मैं जिस शोभा को देख रहा हूं उसके नाम के आगे श्री और पीछे देवी लगना चाहिए था —उत्तर ने वार्ता के वातावरण को गम्भीर बना दिया।

'ओह ! साथ ही उसने हसने की कोशिश की बोली—"शोभा वही है किरण बाबू जिसके नाम के आगे श्री और पीछे देवी कुछ समय पहले लगता था। कुछ ही अर्सा हुआ समाज ने अपनी इस इज्जत को उससे छीन लिया है। आजकल वह एक वेश्या है। वेश्या, जिसे समाज का सभ्य पुरुष सडक पर नफरत की निगाह से देखता है परन्तु अंधेरे म उसी के कोठे पर जाकर जिसकी पूजा करता है। जिसकी अपने स्थान पर इस तरह पूजा हो वह देवी नहीं हुई किरण बाबू ?'

'मेरा मतलब गृहस्थ की एक देवी से है।

गृहस्थ की देवी ! शोभा भी एक दिन गृहस्थ की देवी ही थी, किरण बाबू ! मेरा ख्याल है कि समाजवाले अपनी सभ्यता के नाते देवी शब्द के योग्य न होते हुए भी हर सामाजिक नारी के नाम के पीछे इस सुसभ्य शब्द को लगा ही देते हैं। यह शायद इसलिए कि समाज की नारियों की इज्जत उनकी दृष्टि म उनकी पत्थर की देवियों से अधिक नहीं होती।

मेरा मतलब है कि शोभा के व्यक्तित्व की नारी को समाज म गृहस्थ का सर्वोच्च आसन मिल सकता था।

'कौन कहता है कि वह उसे नहीं मिला ?'

'फिर उसे ठुकराकर बाजार में आ बैठने की जरूरत उसे क्यों पड़ आई ?

'इसलिए कि वह बेवकूफ नहीं थी। अंधेरे में चुपचाप अपना सर्वस्व लुटाना उसने अपनी एक कायरता पूर्ण बेवकूफी समझी। समाज के सुसभ्य श्रेष्ठ एक अबला से उसकी सम्पत्ति का सौदा बहुत सस्ते दामों में करने चाहते थे, किरण बाबू! वह लुटी भी जब तक उसे होश न आया। परन्तु जब उसे मालूम हुआ कि समाज में रहते हुए तो उसे उन्हीं की कीमत स्वीकार करनी होगी तो एक दिन उसने साहस किया और उनके घेरे को तोड़ स्वतंत्र हो बाजार में आ बैठी। रात्रि में एक कोठे के प्रकाश में बैठ कर उसने अपनी सम्पत्ति की असली कीमत जाननी चाही और तब कहीं उसे मालूम हुआ कि जिस चीज का मूल्य अंधेरे में अब तक उसे मिल रहा था वह तो उस चीज के प्रदर्शन मूल्य से भी कम था। अबला की आँखें खुल गई। प्रकाश से पुनः अंधेरे में जाना उसने उचित न समझा और तब से आज तक वह इस प्रकाश में ही है।

कमरे मे अब तक करुणाभरी भीषण नीरवता छा गई थी। शोभा का रूप अपनी भावुकता में गंभीर हो चला था। अपना वक्तव्य समाप्त करने के बाद वह कई क्षण तक चुप रही। किरण और अजीत ने देखा कि इस अवसर पर उसके चेहरे पर किसी गहरे दर्द के भाव आ छाए हैं। उन भावों में उसका अदृश्य रोष झलकता था। अपनी चुप्पी को भंग करते हुए उसने इस बार अजीत को कहना शुरू किया—'रक्षा और मानवता के नाम में आश्रयहीन यौवन व सौन्दर्य पर समाज के समर्थ जो जुल्म ढाते हैं उसका अन्दाजा सिवाय एक भुक्तभोगी के और कोई नहीं लगा सकता अजीत बाबू! आश्रयहीन अबला के लिए समाज में कोई सुरक्षित स्थान है ही नहीं। समाज के समर्थ श्रेष्ठों की यह चाल है कि बस पहले

वासनाओं की वस्तुओं को अपने अधिकार से दूर नहीं जाने देते। त्याग तपस्या आदर्श मानवता धर्म सेवा कानून न जाने और भी कितने षडयन्त्र के सिद्धांत इन्होंने औरों के अपमान के लिए बना रखे हैं। भोले मानव के लिए उनके इन शब्दों में कितनी प्रवचना है, यह सब वे वञ्चक ही जानते है। जो इस ठगी के खिलाफ आवाज उठाता है वही उनकी भाषा में चरित्रहीन विपथगामी व और भी न जाने क्या क्या है।"

इतना कह शोभा ने पाँव अपनी भावुकता के आवेश में अपने सामने की जमीन पर आगे बढ़ाए। इस बीच वह दो एक क्षण के लिए चुप भी हो गई। मगर उसकी भावुकता की बाढ़ उमड़ी चली आ रही थी और उसने चुप न रहने दिया। किसी निश्चय की स्थिर मुद्रा मुंह पर धारण किए हुए उसने घूम कर कहना शुरू किया— समाज में रह कर समाज की संस्कृति के विरुद्ध आवाज उठाने में इंसान एक कमजोरी महसूस करता है अजीत बाबू! वही कमजोरी उसकी मजबूरी बन जाती है और फिर तो उसके दुख दर्द एकांत में आँसू बन कर बह निकलने का विफल प्रयास करने के सिवाय और कोई मार्ग नहीं पाते।

दुनिया में मजबूरी इंसान पर ही आती है शोभा देवी! परन्तु इन्सान हमेशा गिरता नहीं। अपने भरण पोषण के लिए आप किसी और दिशा में भी तो अपने हाथ पाँव हिला सकती थीं।—

'हृदय मस्तिष्क से ऊंचा है मस्तिष्क मन से किरण बाबू। अंतर से गिरने की बजाय बाहर से इस शरीर से गिरना मैंने अधिक अच्छा समझा।

जब मस्तिष्क से ही सब चलता रहे फिर और परिश्रम की क्या मान्यता है, किरण बाबू? वाणी हरीन की थी।

'चुप रहो तुम। दो की बातचीत मे तीसरे को दखल नहीं देना चाहिए।'—फिर किरण की ओर रुख करके उसने कहना शुरू किया—'भारतीय समाज की वर्तमान परिस्थितियों का आपको ज्ञान है किरण बाबू। आप यह भी जानते हैं, कि साधारण गृहस्थ मे एक बालिका का जीवन प्रगति किस तरह होती है। परन्तु आप यह नहीं जानते कि उसी गृहस्थ मे पली बालिका के लिए आश्रयहीन हो जाने पर अपना जीवन चलाने के लिए क्या और कितने साधन शेष रह जाते है। मैं आपसे पूछती हूँ कि गृहस्थ जीवन मे आप अपने शिशुओं को ऐसी कौनसी शिक्षा देते हैं जिससे यह आशा की जा सके कि वे भविष्य जीवन की विषम परिस्थितियों मे से बिना किसी सहारे के सकुशल गुजर जायेंगे। अपने हाथ से आप उन्हें जलती हुई आग मे झोंकते हैं और जब किसी तरह उससे झुलस टलकर वे आपके सामने आते हैं तो आपको दुख होता है—पीड़ा होती है। मैं पूछती हूँ क्यों? जब अपने हाथ की वस्तु को आग मे फेंकने का दुख आपको नहीं होता तो उसकी आंच का दुख आप क्या करते हैं?' शोभा अपने इस प्रश्न के बाद क्षण एक के लिए ठहर गई। किरण के उत्तर की, शायद उसे प्रतीक्षा थी पर न किरण ने उत्तर नहीं दिया। उसने फिर प्रश्न किया—'आप चुप हैं?' मगर किरण चुप ही रहा।

रात्रि के इस नीरव प्रहर मे स्तब्धता छा गई। शोभा के वेश्यापन मे अजीत को एक विचित्र जादू की झलक मिली। वह इस पतिता नारी के विश्लेषण तथा उसकी भाषा सौन्दर्य पर मुग्ध था। उसका व्यवहार व उसकी प्रहारमयी भाषा उसके लिए आकर्षण की वस्तुएँ थीं। उसने अनुभव किया कि उसके मित्र किरण पर भी इस नारी का वही असर था जो उस पर था। इसीलिए शायद वेश्या शोभा के लिए उसके मुँह से देवी व आप शब्दों का प्रयोग अनिवार्य हो गया था। शोभा ने ही आखिर अपनी विचारधारा मे से गुजरकर कमरे की इस नीरवता को भंग किया।

बोली— आप शोभा को एक वेश्या के रूप में नहीं देखना चाहते उसके लिए शुक्रिया किरण बाबू। परन्तु शोभा को अपना वेश्यापन इतना प्यारा है कि वह किसी मूल्य पर भी उसे अपने नाम जिन्दगी से परिवर्तित करना नहीं चाहती।

प्रस्तुत विषय का प्रधान बिन्दु इस समय शोभा पर केन्द्रित था। किरण ने उस ओर अधिक ध्यान देना उचित नहीं समझा। पास खड़े हुए हरीश की पीठ पर एक हल्की सी थाप मारते हुए वह बोला— हरीश की संस्कृति का विकास भी फिर आपकी निगरानी के अनुकूल ही चल रहा होगा? —मुस्कर शोभा बोला— इसमें शक करने की ही क्या वजह है किरण बाबू! —क्षण एक विराम कर वह आगे बोली— परन्तु आपका हरीश एक कमजोर पुरुष है। अपने काम की सफलता के बाद भी कभी-कभी वह बच्चा की तरह रोने लग जाता है। अनेक बार उसने अपनी इस कमजोरी में रातों आंसू बहाए हैं। वेश्या शोभा के हाथ यदि उसे उस समय सहारा न देते तो वह तो कभी का पथभ्रष्ट हो जाता।

'तुम इसमें सुख और गर्व मानती हो शोभा देवी?'—प्रश्न के साथ ही किरण के चेहरे पर एक आतंकभीरु की श्याम छाया आ छाई। शोभा बोली—'अवश्य, किरण बाबू! मैं अवश्य सुख और गर्व मानती हूँ। इच्छा और इल्म से किए हुए काम पर इंसान को पश्चाताप नहीं करना चाहिए। एक पशु में भी उस पर किए हुए जुल्म की प्रतिक्रिया होती है किरण बाबू। हरीश तो फिर एक मानव है।'—उसने दो एक क्षण के लिए अपनी ज्वालामयी दृष्टि को किरण की आंखों में आरोपित कर दिया। किसी कठोर भाव की विकृत रेखाएं इस अवसर पर उसके चेहरे पर आ फिरीं। इसी मुद्रा को मुंह पर धारण किए हुए उसने आगे कहा— जब शिकारी को हिंसा में खुशी होती है तो शिकार को प्रतिहिंसा में जरूर

आनन्द आना चाहिए किरण बाबू !" —सुनकर किरण बोला—"हरीश जैसे हीरे को आपने कहाँ पा लिया, शोभा देवी ? साथ ही वह हँस भी पड़ा। उसकी इस हँसी में एक सभ्य प्रियभाषी का व्यंग था।

शोभा बोली— राह में किरण बाबू ! लोग इस ठाकर मारते थे और यह उन ठोकरों को पड़ा सह रहा था। यह रोटी मांगता था और वे इसे पत्थर दे रहे थे। हरीश के शरीर वैभव को देखिये, किरण बाबू ! सुडौल शरीर, उठा हुआ मस्तक ओजभरी आँखें जादूभरा स्वभाव, प्रखर बुद्धि सुकोमल हृदय—क्या नहीं है इस मानव में ? आपके सभ्य समाज के कितने पुरुषों में इस चरित्रहीन हरीश के व्यक्तित्व का सा जादू है ? परन्तु क्या सत्ता की किसी संस्था ने इसकी सुध ली ? समाज की किसी व्यवस्था ने इसकी ओर कभी अपना ध्यान दिया ? अब भी गृह गृह में भटकते और सड़क पर सोते कितने बच्चों को आपकी सत्ता और आपका समाज वहाँ से उठा कर अपने सुधारगृहों में पहुंचाता है ? है कोई ऐसी व्यवस्था आपके शासन और समाज में ? आपकी सत्ता और आपका समाज, उसका सभ्य पुरुष—मात्र अपने लिए जीते हैं, किरण बाबू मानव के लिए नहीं।"

सुधार आश्रम हैं तो सही, शोभा देवी।

"कहाँ हैं, किरण बाबू ?"

'नहीं हैं ?

'नहीं।'

'अबला आश्रम, अनाथाश्रम ।'

'छोड़िए इन आश्रमों को किरण बाबू ! आपने अभी नाम सुने हैं देखा कुछ भी नहीं।"—बीच ही में वह बोल उठी। दो एक क्षण किसी

भीषण विचारधारा म से गुजर कर उसने एक गम्भीर म-स्वर म कहना शुरू किया—'अपनी निराशा म एक दिन मैं भी आपके इस आश्रमा को चली थी। जिस समय मैं आश्रम के अधिकारी के पास पहुची उस समय मेरे हृदय म जीवन मरण का प्रलय भरा तूफान अपनी उथल-पुथल मचा रहा था। अपना दर्द कहते-कहते तो मेरी आखो के आंसुओ म—जीवन का दर्द भरी कहानी म पुरुष की विपलान की शक्ति है। —इतना कह वह फिर चुप हो गई। इस अवसर पर उसकी आखें दो एक क्षण के लिए स्वप्न ही शायद, किसी अतीत की याद म मुड़ गई। अजीत और किरण अपनी अपनी आरोपित दृष्टि से शोभा की भाव चेष्टाओ को देख रहे थे। कुछ एक क्षण चुप रह कर उसने कहना शुरु किया—'परन्तु मेरा वह विश्वास उसी रात झूठा साबित हुआ किरण बाबू अबलाश्रम के अधिकारी के अशोभनीय प्रस्ताव को अस्वीकार करने के अपराध म मैं उसी रात वेश्या करार दी जाकर तुरन्त उस आश्रम स बाहर कर दी गई। सच कहती हू किरण बाबू तब तक मैंने बाजार म बठने का इरादा भी नही किया था। आपके सामाजिक आदश व संस्कृति का आधार ही अस्वाभाविक व अप्राकृतिक है। अपनी आदर्शरक्षा के प्रयास म नारी को पर्दे की ओट मे देकर पुरुष ने अपने लिए उसे एक नई व अशाप्य भेदभरी वस्तु का आकर्षण दे दिया है। एक ओर नारी पिंजरे म कद है—दूसरी ओर स्वतन्त्र पुरुष उसके सम्पर्क के बिना अतृप्त है। क्यो ऐसे आदर्श और क्यो ऐसी संस्कृति को आपने अपना रखा है जो आपको मन और मस्तिष्क से चैन नही लेने देते। अपने अनुभवो के आधार पर मैं आज यह कहने का दावा रखती हू कि समाज के कथित चरित्रवानो की बजाय हरीश जसे चरित्रहीनो के हाथ म एक अबला का सवस्व अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित है।"

अजीत और किरण ने देखा कि वेश्या शोभा के वात्सल्य म एक

सुलझे हुए मनोवैज्ञानिक की तत्वग्राहिणी धारणा है। सत्य अपना असर किए बिना रह नहीं सकता। अजीत और किरण पर भी शोभा के वक्तव्य का असर हुए बिना न रह सका। उन्होंने अनुभव किया कि उसके वक्तव्य में एक सत्यवक्ता का गाम्भीर्य व भुक्तभोगी की वेदना है। शोभा अपने उपरोक्त वक्तव्य के बाद चुप हो गई थी। अजीत चुप था। परन्तु किरण से अधिक देर तक चुप रहते न बना। बोला— आपकी उम्र क्या होगी?'

'क्या मतलब?'

'मैं जानना चाहता हूं।'—प्रश्नकर्ता में अब तक शिथिलता आ गई थी। सुन कर शोभा पहले तो कुछ विचार मग्न सी मालूम हुई परन्तु तुरत किरण के तात्पर्य को समझते हुए उसने पूछा— 'ओह! आप जानना चाहते हैं कि आज मैंने अपनी कौन-सी सालगिरह मनाई थी।'

'हां।'—उत्तर सुनकर शोभा ने हंस दिया। बोली—शोभा एक वेश्या है किरण बाबू। वह साल में सौ सौ सालगिरह मनाती है। इससे भी अधिक मना सकती है यदि उसे और अधिक मान चांदी की आवश्यकता हो।'

'और इस कार्य में आपकी सहायता करते हैं ये दादा और आपका हरीश।'—शायद वार्ता का इस मंजिल पर किरण के पास और प्रश्न न बचे थे। सुन कर शोभा बोली—

'अपने कार्य में शोभा को किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती किरण बाबू। शोभा ने अपने उत्तर के आखिरी शब्द कह ही थे, कि, दादा ने आकर कहा—'खाना भी खाना है या नहीं?

'तैय्यार है?' शोभा ने पूछा। साथ ही अपनी जगह से चल पड़ी। किरण ने समय देखा। उसकी हाथ घड़ी कुछ ही मिनट पहले बारह बजा चुकी थी। शोभा के आग्रह पर किरण और अजीत भी उसके [illegible]

लिए। पास के ही दूसरे कमरे म खाने का प्रबध था। सब साथ बठ कर खाने लगे। खाने के बीच म चरित्रहीना क इस गृहस्थ क एक नौकर ने हरीश को मिठाई परोसते हुए कहा— मालिक इस सेठ की चीज घर लाने पर कभी पूरी नही उतरती ?

'कौन सेठ ?' शोभा ने पूछा।

वही—ऊंचे कदवाला—मोटा सा। ससुरा दाम भी अधिक लगाता है और तौलता भी कम है।

अबे तौलता तो है। —मु ह क कौर को पानी से पेट म उतारते हुए हरीश ने कहा। सुन कर सब हस पडे। किरण और अजीत की हसी दूसरो से कुछ लम्बी रही। अपनी इस हसी की खुशी म किरण ने हरीश क श दो को दो एक बार अपने मु ह स दोहरा भी दिया। उसे हरीश के सेल्फ हेल्प सिद्धा त की स्मृति हो आई थी। उसके उस आशय को समझते हुए हरीश बोला— एक तो बिचारा देता है और उस पर यह बेवकूफ शिकायत करता है कि कम देता है ज्यादा पसे लेता है।

यह बेवकूफ ? —अजीत के मु ह से श द निकल पडे।

'जरूर यह बेवकूफ ! एक बार नही सौ बार बेवकूफ ! दुनिया मे बेवकूफी और बुद्धिमानी की कोई निश्चित परिभाषा नही हो सकती अजीत बाबू ! इसान की आदत है कि वह अपने से सहमत को बुद्धिमान और अपने से असहमत को बेवकूफ सदियो से कहता आया है। — मुझे विश्वास नही कि तुम्हारी यह बुद्धिमानी अधिक दिन काम देगी। किरण मुस्कराता हुआ बोल पडा।

तुम बहुत भोले हो किरण बाबू ! जिन्दगी के दिनो से दुनिया म मानवों की सख्या कहीं ज्यादा है। यदि एक सभले तो तुम दूसरे को सभालो।

'और यदि प्रथम बार ही पकडे गये ?''

'इसस क्या ? उस हालत मे सरकार अपने आप सब इतजाम करेगी। बिना कुछ किए भी तो इसान अनेक बार पकड कर बन्द कर दिया जाता है, किरण बाबू। यदि कुछ करके पकडे गए तो फिर पछतावा ही किस बात का ? 'सेल्फ हेल्प'—सेवी समाजभीरु तो होता ही नही जो सजा अथवा उसकी पहले या पीछे की मजिलो से भय करे। सिद्धान्ता पर जेल जाने वाले तो वैसे भी दुनिया म इज्जत की निगाह से देखे जाते हैं।'

'मगर, कौन से सिद्धान्त ?'

'सिद्धान्त सिद्धा त सब एक जसे हैं। सिद्धान्त वही सही है जिससे अटका हुआ काम निकल जाय। दुनिया वाले स्वत ही उसे अपना लेंगे। समझे ?'

नही।'

"नहीं ? खर ! लो समझाता हू। दुनिया म भलो की सख्या अधिक है या बुरों की ?''

'क्या मतलब ?

'मै पूछता हू। उत्तर देते जाओ।'

'बुरो की।

फिर भय ही क्या है अब तो सरकार भी छोट मोटे चुनाव कराने लगी है। चुनाव के इस जमाने में हरीदा को एक बहुत बड़ी दलित सख्या का सहयोग प्राप्त होगा। जरूरत क मारे अपार स्त्री पुरुष उसके सिद्धा त के अनुगामी हो जायगे। तुम्हारा हरीदा अपने जीवन में उस दिन का इन्तजार करेगा, जब अधिकारों के भूखे अपनी निराशा की आखिरी कोशिश मे सत्ता और समाज की अन्यायपूर्ण व्यवस्था को अस्तव्यस्त कर

जड से उखाड फेंकेंगे। धर्म और राजनीति के अन्य मान्य विविध सिद्धान्तों को भी हत्या संग्राम व महासमर तक का समर्थन दुनिया मे मिल जाता है—तो कोई वजह नहीं कि हरीश को मानव के अस्तित्व से संबधित इस सिद्धांत के लिए अनुयायी न मिलें। मानवता की दृष्टि मे तो हरीश के तरीके उतने भीषण व पापमय भी नही किरण बाबू! कारण अपने अस्तित्व के प्रयास में हरीश का स्वयंसेवी मानव के शरीर पर तो कभी घात करता ही नहीं। अपने दुर्दिनों में वह तो दूसरे की अनावश्यक सम्पत्ति में हिस्सा पाने का अपने को अधिकारी समझता है और उस सम्पत्ति पर ही अपनी बुद्धि के बल चोट करता है। समाज के इने गिने कथित सभ्य अपनी रहस्यमरी चाल को चौपट हुई देख चाहे हरीश से घृणा करें परंतु उनकी स्वार्थमयी घृणा देश व समाज की वर्तमान परिस्थितियों में उस एक बहुत बडे दल का नेता होने से नही रोक सकती। थोडे से आदमियो के नेता से अधिक आदमियों के सरदार की शान अधिक नही होगी किरण बाबू?' इतना कह दूसरों को अपना भोजन समाप्त करते देख हरीश ने भी अपनी थाली की आखिरी सामग्री जल्दी से समाप्त कर डाली। इस समय मध्य रात्रि का अर्ध प्रहर बीत चुका था और चन्द्रमा की सुखमय चादनी कमरे की छत व बरामदो पर उतर आई थी। शोभा मुस्कराती हुई चादनी में चली गई और उसके पीछे पीछे दूसरे भी चल दिये।

: १३ :

सुबह जब किरण व अजीत सो कर उठे तो उन्होंने देखा कि इस घर के तमाम सदस्य उनसे पहले ही उठ चुके थे। थोड़ी देर इधर उधर करने के बाद जब वे कमरे के आगे आए तो उन्होंने देखा कि नीचे घर के चौक में खड़ा एक साहबी युवक अपने बूटों के फीते नौकर से बंधवा रहा है। उनके देखते देखते शोभा को साथ ले वह जीने पर चढ़ गया और उनके सामने से होता हुआ एक कमरे में भी प्रविष्ट हो गया। अजीत और किरण ने कुड़ी निगाहों से इस पुरुष को देखा मगर क्योंकि अपरिचितों से बिना परिचय हुए सलाम दुआ करना आजकल की सभ्यता के विरुद्ध है अजीत और किरण ने ऊपर आए इन आगन्तुकों पर से तुरन्त अपनी अपनी दृष्टि हटा ली और किसी पारस्परिक चर्चा में व्यस्त हो गए। इस अवसर पर शोभा ने भी साक्षात करना किसी कारण से उन्होंने उचित नहीं समझा। अजीत और किरण को खड़ा देख एक बार इन आगन्तुकों के पांव भी रुकते से नजर आए परन्तु किसी व्यक्तिगत पारस्परिक चर्चा में, शायद दखल देना उन्होंने उचित न समझा हो और इसीलिए बिना साक्षात किए ही वे सीधे कमरे में प्रविष्ट हो गए।

किरण ने अपनी हाथघड़ी में समय देखा। हरीश का आज आने वाला दोस्त तो यह नहीं हो सकता था। फिर सोचा कि इस घर में आने जाने वाले व्यक्तियों का परिचय पाने से फायदा? यहां तो कोई भी आ सकता था, कोई भी ठहर सकता था। खड़े खड़े कई विचार इसी तरह के कुछ क्षणों में किरण की विचारधारा में बह गए। इसी किस्म की अपनी

किसी विचारधारा में किरण व्यस्त था—और शायद अजीत भी, कि, कमरे से निकल कर वे स्त्री पुरुष उनके सामने मुस्कुराते हुए खड़े हो गए।

पुरुष ने प्रश्न किया— नींद आ गई तो? —सुनकर दोनों आश्चर्य में अवाक रह गए। उन्होंने शोभा की ओर एक प्रश्नभरी दृष्टि से देखा। वह बोली— मिस्टर हरीश आपसे पूछते हैं कि रात में नींद तो आ गई ? हरीश का नाम सुनकर अजीत और किरण दोनों ही चौंक पड़े। उनकी चकित दृष्टि कुछ क्षण के लिए अपने सामने खड़ी हरीश की पुरुष मूर्ति पर आरोपित हो गई। अपने आश्चर्य में विस्मय के साथ उनके मुंह से सहसा शब्द निकल पड़े— हरीश बाबू! तुम!

वास्तव में हरीश का रूप और भेष इस समय गहरा बदला हुआ था। इस रूप में किरण ने अपने इस साथी को पहले कभी नहीं देखा था। उसके गत रात के रूप व जेल के समय के रूप में भी कुछ अन्तर था, मगर इस समय का अन्तर तो इतना अधिक था कि उसे आसानी से तो क्या मुश्किल से पहचानना भी कठिन था। थोड़ी थोड़ी दाढ़ी मूछों की जगह सफाचट उस्तरा फिरा हुआ था। आंख के नीचे के बड़े से काले तिल का इस समय अस्तित्व ही नहीं था। दांतों की पंक्ति भी इस समय बिल्कुल बदली हुई थी। आंखों पर हल्के रंग का कीमती चश्मा चढ़ रहा था। पाजामा कुर्ता व वास्कोट की जगह अंग्रेजी ढंग सूट की शान थी। ललाट को ढकती हुई वह टोपी इस समय थी ही नहीं। पेशावरी चप्पलों की जगह चमकते हुए बूट पांवों की शोभा बढ़ा रहे थे। अपने साथी के वेश का यह अकथनीय परिवर्तन देख अजीत और किरण दंग रह गए। उन्होंने महसूस किया कि हरीश के चेहरे के कठोर भाव भी पोशाक के साथ साथ कोमल भावों की सुकोमल रेखाओं में परिवर्तित हो गए हैं। इस समय वह एक खासा सुसभ्य युवक नजर आता था। उसे इस वेश में देख कोई नहीं कह सकता था कि यह पुरुष मूर्ति अंधेरी व गन्दी गलियों में चक्कर काटने वाली वही बच्चू बाबू की भयावनी मूर्ति है। अजीत और किरण के विस्मय

विपथगामी

को देख हरीश बोला—

'हरीश को तो आपने आज ही देखा है। वह तो बच्चू था।"—

इतना कह उसने शोभा को अजीत व किरण के लिए कुछ चा पानी का इन्तजाम करने के लिए वहा व खुद अपन नए साथी व साथ वापिस आने। कहकर तुरन्त वहा से चल दिया। चलते चलते उसन दादा और शोभा: तमाम इन्तजामो म सहयोग देने की बाबत अपने मित्रों से एक आखिरी अनुरोध और कर दिया था।

दस बजने से पहले ही हरीश की कम्पनी के कमचारी अपने अपने स्थाना पर आ बैठे। दस बजते बजते हरीश की योजना की सफलता कायरूप म उनक सामने आने लगी। उ होन देखा कि हरीश की प्रकाशित मांग के उत्तर मे अनेको कलाकार आ आ कर कम्पनी के कार्यालय म इकट्ठे हो रहे हैं। छपे हुए शब्द का जादू उ हे अब स्पष्ट हो गया।

प्रारम्भिक परीक्षा क बाद अपने कायक्रम क लिए किरण ने जब आगन्तुक कलाकारो की सूची बनाई तो उसे मालूम हुआ कि इन आए हुए स्त्री पुरुषो म अनेक विश्व विद्यालयो के उच्चशिक्षा प्राप्त स्नातक भी हैं। खैर, हरीश के आने के इन्तजार म वह इधर उधर कर समय बिताने लगा।

ग्यारह बजते बजते इस कार्यालय के सदर दरवाजे पर हरीश की बन्द कार आकर रुकी। अपने मित्र के साथ चपरासी को उसके सलाम का जवाब देता हुआ हरीश इस कायालय की सीढिया चढ गया। अपन कमरे म पहुँच कर उसने अपनी कम्पनी की मुख्य अभिनेत्री शोभा, व निर्देशक किरण व मैनेजर अजीत का परिचय अपन इस मित्र को दिया। इसके बाद दोनो कुछ देर के लिए एक कमरे म खानपान म व्यस्त हो गए।

किरण के पास कायक्रम की सूची तो तैयार थी ही। शोभा से सकेत मिलते ही उसने उसे प्रारम्भ करा दिया। देहली के सुसभ्य कलाकारो

किसी विचारधारा म किरण व्यस्त था—और शायद अजीत भी, कि, कमरे से निकल कर वे स्त्री पुरुष उनके सामने मुस्कुराते हुए खडे हो गए।

पुरुष न प्रश्न किया—'नीद आ गई तो ?'—सुनकर दोनो आश्चय म अवाक रह गए। उन्होने शोभा की ओर एक प्रश्नभरी दृष्टि स दखा। वह बोली— मिस्टर हरीश आपसे पूछते हैं कि रात म नीद तो आ गई ? हरीश का नाम सुनकर अजीत और किरण दोनो ही चौंक पड। उनकी चकित दृष्टि कुछ क्षण क लिए अपन सामने खडी हरीश की पुरुष मूर्ति पर आरोपित हो गइ। अपन आश्चय म विस्मय क साथ उनक मुह से महसा शब्द निकल पडे— हरीश बाबू ! तुम !'

वास्तव मे हरीश का रूप और भेष इस समय गहरा बदला हुआ था। इस रूप मे किरण ने अपने इस साथी को पहल कभी नहीं दखा था। उसके गत रात क रूप व जेल के समय के रूप मे भी कुछ अन्तर था मगर इस समय का अ तर तो इतना अधिक था कि उस आसानी से तो क्या मुश्किल स पहचानना भी कठिन था। थोडी थोडी दाढी मूछो की जगह सफाचट उस्तरा फिरा हुआ था। आंख के नीचे के बडे से काले तिल का इस समय अस्तित्व ही नही था। दांतो की पक्ति भी इस समय बिल्कुल बदली हुई थी। आखो पर हल्के रग का कीमती चश्मा चढ रहा था। पाजामा कुर्त्ता व वास्कोट की जगह अग्रेजी 'ग्रे सूट की शान थी। ललाट को ढकती हुई वह टोपी इस समय थी ही नही। पेशावरी चप्पलो की जगह चमकते हुए बूट पावो की शोभा बढा रहे थे। अपने साथी क वश का यह अकथनीय परिवतन देख अजीत और किरण दग रह गए। उन्होने महसूस किया कि हरीश क चेहरे क कठोर भाव भी पोशाक के साथ साथ कोमल भावो की सुकोमल रेखाओ म परिवर्तित हो गए हैं। इस समय वह एक खासा सुसभ्य युवक नजर आता था। उसे इस वेश म देख कोई नही कह सकता था कि यह पुरुष मूर्ति अधेरी व गन्दी गलियो म चक्कर काटने वाली वही बच्चू बाबू की भयावनी मूर्ति है। अजीत और किरण के विस्मय

को देख हरीश बोला —

'हरीश को तो आपने आज ही देखा है। कल तो बच्चू था।'— इतना कह उसने शोभा को अजीत व किरण के लिए कुछ चा पानी का इन्तजाम करने के लिए कहा व खुद अपने नए साथी के साथ वापिस आने का कहकर तुरत वहा से चल दिया। चलते चलते उसने दादा और शोभा के तमाम इ तजामों म सहयोग देने की बाबत अपने मित्रों से एक आखिरी अनुरोध और कर दिया था।

दस बजने से पहले ही हरीश की कम्पनी के कमचारी अपने अपने स्थानों पर आ बैठे। दस बजते बजते हरीश की योजना की सफलता काय रूप म उनके सामने आने लगी। उ होंने देखा कि हरीश की प्रकाशित मांग के उत्तर मे अनेकों कलाकार आ आ कर कम्पनी के कार्यालय म इकट्ठे हो रहे हैं। छपे हुए शब्द का जादू उन्हें अब स्पष्ट हो गया।

प्रारम्भिक परीक्षा के बाद अपने कायक्रम के लिए किरण ने जब आगन्तुक कलाकारों की सूची बनाई तो उसे मालूम हुआ कि इन आए हुए स्त्री पुरुषों मे अनेक विश्व विद्यालयों के उच्चशिक्षा प्राप्त स्नातक भी हैं। खैर, हरीश के आने के इ तजार म वह इधर उधर कर समय बिताने लगा।

ग्यारह बजते बजते इस कार्यालय के सदर दरवाजे पर हरीश की कार आकर रुकी। अपने मित्र के साथ चपरासी का उसके सलाम का जवाब देता हुआ हरीश इस कार्यालय की सीढ़ियां चढ़ गया। अपने कमरे म पहुँच कर उसने अपनी कम्पनी की मुख्य अभिनेत्री शोभा, व निर्देशक किरण व मैनेजर अजीत का परिचय अपने इस मित्र को दिया। इसके बाद दोनों कुछ देर के लिए एक कमरे म खानपान में व्यस्त हो गए।

किरण के पास कायक्रम की सूची तो तयार थी ही। शोभा से सकेत मिलते ही उसने उसे प्रारम्भ करा दिया। देश के सुसम्य कलाकारों

ने करीब तीन घण्टे गा बजा व नाच कर हरीश के मेहमानों का मनोरंजन किया। कार्यक्रम की समाप्ति पर हरीश व उसके अतिथि तो एक कमरे में चले गए। रहे कर्मचारी, सो उन्होंने आगन्तुक कलाकारों के नाम व पते कम्पनी के कागजों में लिखकर एक आशाभरे आश्वासन के साथ उन्हें अपने घरों को विदा कर दिया। कहना नहीं होगा, कि इन आगन्तुक कलाकारों के बिखरने से पहले ही हरीश व उसका मित्र इस कार्यालय से कूच कर चुके थे। कम्पनी का आज का कुल कार्यक्रम तीन बजे तक समाप्त हो गया।

: १४ :

पुलिस कमचारी सुरेश दो बजे का क्या काम, डेढ बजे ही अपने वचन के अनुसार तारा के घर जा पहुँचा। तारा के पिताजी अपनी दैनिक पाठपूजा से निवृत्त होकर थोडी देर पहले ही भोजन करने के लिए घर के अन्दर गए थे। अपनी अन्य सुविधाओं को ध्यान म रखते हुए वे अपने इस मिलने भेंटने के कमरे मे ही अपना नित नेम' किया करते थे और यही उनके पान ध्यान की पुस्तक-पुस्तिकाओं का पठन पाठन होता था।

सुरेश आकर अकेला इस कमरे म बैठ गया। समय बिताने के लिए उसन इधर उधर बिखरी पुस्तक पुस्तिकाओं को टटोलना शुरू किया। उसने देखा कि उन बिखरी हुई जिल्दों में कोई पुस्तक गीता है कोई हनुमान चालीसा व कोई विष्णुसहस्रनाम। वह एक के बाद दूसरी को देखता गया। श्रीमद्भागवत रामायण, मनुस्मृति, 'कल्याण' के कई विशेषांक उसको इस कोशिश म उसके हाथ लगे मगर उसने उन्हें देख देख कर वापिस उसी तरह वहीं रख दिया। अपनी आखिरी कोशिश मे उसने एक अलग पडी सुंदर जिल्द को उठाया। इस जिल्द के बीच म एक धागा लग रहा था। धागे की जगह से ही इस सुंदर-सी पुस्तक को खोल कर देखा तो तुरंत उसे हंसी आ गई। उसके सामने के दोनों पृष्ठ राम और कृष्ण के नाम मात्र से ही भरे पडे थे। उसने दूसरे पृष्ठों की जाच की मगर सारी पुस्तक राम कृष्ण इन दो शब्दों की माला बन रही थी। अलावा इसके और कुछ भी इन पुस्तकों मे नहीं था। पुस्तक को बन्द करके वापिस उसी स्थान पर रख दिया। मगर इस रखने के बाद क्षण एक के लिए उसकी आंखें। किसी

विचार म बन्द हो गई । इस पुस्तक को पढ़ पढ़ कर लालाजी राम और कृष्ण का जप ध्यान करते हैं—क्या इसलिए ? हो सकता है। ऐसी पुस्तकें क्या प्रकाशित होती हैं ? कोई रोक नहीं शायद इसलिए। कोई साथ पता है ? पाठक व प्रकाशक जाने । खर— सुरेश को अधिक समय तक इस विषय म चिन्तित न रहना पड़ा। पास क ही कमरे म पीनू करुआ क स्वर किसी सितार म स बज उठे थ। उसका ध्यान अपने आस पास बिखरी पुस्तक-पुस्तिकाओ स हट कर उन सितार के स्वरों म चला गया और लालाजी क आन तक यह बराबर उन्हें ही सुनता रहा। लालाजी के कमरे म कदम रखने ही सुरेश अपनी जगह स उठ खड़ा हुआ। यह शायद इसलिए कि लालाजी से सुरेश के बुजुर्गों का कुछ भाईचारे का हिसाब वर्षों से रहा था। उसने कहा— मैं हाजिर हू।

और मास्टर ?

उसकी आप जानें। मैं तो जानता हू कि वह यहां और कभी नही आयगा। अपना हिसाब लेने भी, शायद नहीं।'

लालाजी बटने से पहले एक बार तारा के कमरे म गए और कह आए कि यदि मास्टर साहब आए तो वह एक बार उनके पास भेज दे। इसके बाद वे सुरेश के पास बठ गए और अपना ईश्वर सबधी ज्ञान उसे सुनाने लगे। उनकी इस चर्चा म अधिकतर किस्से-कहानिया ही अधिक थी। सुरेश अपनी सभ्यता और शील के नाते लालाजी के वक्तव्य को सुनता रहा। अपनी अन्यमनस्कता मे कभी कभी वह पुस्तकों म लगी तस्वीरो से अपना मनबहलाव कर लिया करता था।

जसे तस करके चार बज गए। तारा के मास्टर तो आए ही नही। सुरेश बोला— आपको विश्वास हुआ 'लालाजी ?'

अब मैं मानता हू। —अपनी हार मे उनकी आवाज दब गई। अफसोस म उन्होंने अपना सिर एक बार झुझला कर किसी विचार मे झुका लिया।

'आप नही जानते लालाजी कि ये सफेदपोश किस दर्जे के बदमाश होते हैं। आप जैसे धार्मिक विचारो के आदमी तो इन लोगो की धोखेभरी चाल को कभी समझ ही नही पा सकते। विश्वास और फिर धोखा—बस यही इनका महामन्त्र है।''

'राम राम—ईश्वर बचाए।—तारा।—

पिताजी की पुकार सुन तारा कमरे के द्वार पर आकर खड़ी हो गई। बोली—'जी।

'सुना तुमने?'

नही।''

'तुम्हारे मास्टर आज नहीं आए तो?'

'नहीं तो।

अब वे कभी आएगे भी नहीं।

कारण?'' प्रश्न के साथ ही उसके चेहरे की हवा बदल गई। सुरेन बोला—

उसने मुझे यहा कल घेर लिया है इसलिए।— अपने मुह से सुरेन का यह व्यक्तित्व प्रकाशन तारा को बहुत बुरा लगा। तारा लालाजी की 'लाडली' लड़की थी। उसके लिए यह असह्य था कारण अपने मास्टर साहब की वह बड़ी इज्जत करती थी। पढ़ी लिखी तो थी ही। आवेश भी आ गया था। उसने कहा— देखा तो मैंने और पिताजी ने भी है। आप इतने भयावन तो नही हैं कि आपको देखकर कोई आपके सामने ही न आए। —उसके उत्तर के प्रथम भाग में रोष और शेष भाग में व्यंग था। अपना व्यंग उसने एक मुस्कराहट के साथ अपने मुह से बाहर किया था। सुरेन और लालाजी दोनो को तारा के भाव स्पष्ट हो गए। लालाजी तो हंस पड़े। मगर सुरेन बोला— वह सजायाफ्ता है तारा।'' वह हंस पड़ी।

बोली— इन के कितने महापुरुष आप लोगों की सजा से बचे हैं ? दुनिया के किस महापुरुष को आपके कानूनदानाओं ने मुजरिम नहीं करार दिया ? आपके न्याय का पैमाना इन्सानियत का पैमाना नहीं है सुरेश बाबू !'

यदि वह सच्चा था तो आज आया क्यों न ? सुरेश के इस प्रश्न को सुन कर तारा क्षण भर के लिए तो चुप रही मगर, कुछ सोच कर उसने उत्तर दिया— आप समझते हैं कि अपनी सजायाबी के किस्से को मास्टर साहब ने हमसे छिपाया है। आपको गलतफहमी हुई है, सुरेश बाबू। पिताजी चाहे न जानते हों मुझे सब मालूम है। आना न आना तो उसी परिस्थिति में उनकी भावुकता पर आश्रित है। किसी की विवशता का यह निवचन नहीं है। अपनी सम्मान रक्षा कोई किस प्रकार करे यह उसकी प्रतिक्रिया पर ही निर्भर है सुरेश बाबू। आखिर प्रजा का प्रत्येक पुरुष सरकारी कर्मचारी के अधिकारों का तो सामना नहीं कर सकता। आपके साथ मैं विवाद में नहीं जाना पर तु मैं कहती हूँ कि मुझे सब मालूम है।'

क्या मालूम है

कहती हूँ न कि मुझे कुछ मालूम है।

वे सजायाब नहीं है ?

किसने कहा नहीं है ?

फिर ?

उन्होंने जुर्म नहीं किया। वे जुर्म नहीं कर सकते। जुर्म की दुनिया से वे बहुत दूर हैं। मैंने जितने समीप से उन्हें देखा समझा है आपने वह प्रयास भी नहीं किया। —सुन कर सुरेश हँस पड़ा। मगर तारा का अपने मास्टर साहब की इन्सानियत पर विश्वास था—अटल विश्वास। सुरेश के हँसने पर वह बोली— क्या जुर्म किया उन्होंने ? जवाब मिला— उस डाके के जुर्म में सजा हुई है।

तारा के पिताजी को मास्टर साहब म इतनी अभिरुचि नहीं थी कि उसके लिए वे अपने समीपवर्ती सबधियो म और अधिक वाद विवाद बढने देते। दोनो को अपने दोनो हाथो के सकेत से चुप करते हुए उन्होने कहना प्रारभ किया— सरकार ने जब किसी को दण्ड दे दिया तो हम उस सत्य स्वीकार कर लेने म आपत्ति नही होनी चाहिए। सच है कि सरकारी काम सारे सच्चे नही होते फिर भी सब निराधार भी नही कहे जा सकते। तारा जवाब देती मगर उसने देखा कि कई अपरिचित पुरुष इसी समय कमरे की ओर बढ चले आ रहे हैं। वह वापिस मकान के अन्दर की तरफ चली गई। सुरेन ने विदाई चाही। लालाजी बोले— तारा अभी भोली लडकी है सुरेश! उसे जीवन का व्यावहारिक ज्ञान नही है। तुम ध्यान न देना। उसम आवेश अधिक है। व्यावहारिकता तो धीरे धीरे आती है। तुम किसी दूसरे मास्टर का उसके लिए प्रबन्ध कर दो।

'कल ही कर दूगा लालाजी। अभी तो आज्ञा दो। इतना कह सुरेन ने हाथ जोडे और लालाजी के मुह से आशीर्वाद सुनता हुआ वह कमरे से बाहर चला गया।

अपने पिता व सुरेश की उपस्थिति से लौटने के बाद तारा को चैन न पडा। कुछ देर तक तो वह अनमनी सी घर म इधर उधर फिरती रही मगर जल्दी ही उसने यह महसूस किया कि उसकी वह बेचैनी उसके लिए असह्य थी। क्या सुरेन सच्चा है? क्या मास्टर साहब सचमुच सजायाब हैं? क्या डाके का सा भयङ्कर जुर्म उन्होने किया? क्या अब वे इस घर म न आयेंगे? यदि आ गए और पिताजी ने उनके साथ पहले जैसा व्यवहार न किया फिर? उक्त प्रश्नों से सर्वाधित एक विचारधारा उसकी उक्त बेचैनी का कारण थी। इन्ही प्रश्नों की समस्या का हल उसे शान्त कर सकता था।

इस वक्त सध्या की सुनहरी किरन म पन सवा घंटे का समय और बाकी

था। अपने 'नोट बुक' में से तारा ने किरण के निवास स्थान का पता एक कागज के टुकड़े पर उतारा और अपने मोटर चालक को साथ लेकर वह मोटर में बाहर चल पड़ी। जिस समय किरण के कमरे पर वह पहुँची उस समय किरण खड़ा कोई कीर्तन गुनगुना रहा था। उसका दोस्त अजीत कोने में पड़ी खाट पर बैठा किसी मासिक पत्र को देखने में संलग्न था।

नमस्ते!'

'तारा! तुम!'

जी।' उसके स्वर में उसका गाम्भीर्य झलकता था। किरण ने देखा कि उसकी मुस्कराहट में वह स्वाभाविकता नहीं है जिसे वह हमेशा से देखता रहा है।

'आओ! किस तरह आई?'

आप आए नहीं?

ओह!' किरण ने कहा। एक मेज के सहारे पड़ी दो कुर्सियों पर वे बैठ गए। किरण बोला— मैं तो अनेक बार नहीं आता हूं। तुम इसलिए तो नहीं आईं तारा!' अब तक तारा ने अजीत को देख लिया था। किरण ने तारा का ध्यान उसकी ओर आकर्षित होते ही दोनों का परिचय एक दूसरे को दे दिया।

फिर आप जानते हैं कि मैं क्यों आई हूं?

किरण ने क्षण एक उसकी भाव चेष्टाओं का पठन कर कहा— 'मैं तो अनुमान ही लगा सकता हूं, तारा।

'मैं जानती हूं कि आपका अनुमान मिथ्या नहीं होता।'

किरण कुछ क्षण के लिए किसी विचारधारा में मग्न हो गया। उसके हाथ की कोहनी इस समय मेज पर थी और अंगुलियां सर पर। अपने विचार के बाद उसने कहा—

'सुरेश आया था ?"

हाँ।

क्या कहा उसने ?

वह तो आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। मैं जानना चाहती हूँ कि क्या यह सब उसने सत्य कहा ?

'हाँ।— सुन कर तारा के चेहरे पर अनेक जो चयमयी रेखाएँ आ छाई। क्षण एक ठहर कर किरण आगे बोला— एक तरह से उसने सच ही कहा है तारा।

फिर आप सजायाफ्ता हैं ? तारा का गम्भीर स्वर अपने दर्द के कारण मन्दा पड़ गया।

उत्तर आया— हाँ। पुन प्रश्न हुआ और वह सजा आपको डाके के जुर्म में हुई है ?

हाँ। यह भी सत्य है तारा।

आपने डाका भी डाला ? तारा की आँखों में प्रश्न के साथ ही आँसू छलक आए। इस प्रश्न के एक उत्तर पर उसके सारे विश्वास की नींव थी। अगर प्रश्न का इस बार भी [illegible] में उत्तर न आ जाय— इसकी सम्भावना से उसके चेहरे पर भयभरी आशंका के भाव आ छाए। मगर उसने सुना— तुम इस पर विश्वास करती हो तारा ? तारा का आना बधा। उसकी स्वाभाविक मुस्कान उसके चेहरे पर वापिस लौटती नजर आई। उसने कहा— नहीं। किरण बोला— मैंने किसी पर कभी डाका नहीं डाला तारा। व्यवस्था की सबसे अधिक जिम्मेदार संस्था पुलिस का स्वार्थ करता और समाज के सबसे अधिक समय व्यक्ति एक [illegible] के रोष का शिकार हुआ हूँ। सम्भव है तुम्हारे इस सुनने का कोई स्वाद होगा।— आज से करीब बारह महीने पहले की बात है मैं और उसने मुझ से

निरयगामी

ग्राखिर तब जो कुछ जिस तरह हुआ था सब तारा को सुना दिया। सुन कर तारा बोली— ग्राप घर कब ग्रायगे ?"

अब मैं नहीं ग्राऊगा, तारा।

कारण ?'

'कारण कुछ नहीं। तुम्हारे घर म तुम्हारे जसे ही ग्रौर सब न्हीं हैं तारा। मैं बहुत कमजोर ग्रौर भीरु हू। बहुत ग्रधिक भावुक हू। अपने प्रति दूसरे के हृदय म ग्राए दुर्भावो का सामना मैं नहीं कर सकता तारा। ग्रब इतना कमजोर हो गया हू कि इतनी सी बात को सहन करने की भी शक्ति मेरे म नहीं है। इसीलिए अब मैं न ग्रा सकूगा तारा। तारा ने सब समझ लिया। उसके हृदय म कुछ चोट भी लगी। मगर उसने ग्रौर कुछ कहना उचित न समझा। किरण के ग्राग्रह पर तारा ने एक गिलास पानी लिया ग्रौर विशेष वार्ता इस समय दोनो के बीच नहीं हुई। तारा के हृदय की सवेदनाए उसके नेत्रो की सजलता म ग्रपने प्रति किरण का प्रकट हो चुकी थी।

जिस समय किरण तारा को सडक तक छोडकर वापिस ग्रपने कमरे म ग्राया तो उसने देखा कि एक बन्द लिफाफा उसकी मेज के एक दनिक पत्र के नीचे पड़ा है। इस लिफाफे पर उसकी दृष्टि तब पडी जब उसने इस दनिक पत्र को उठाया। लिफाफे को खोलकर देखा तो उसम दस दस के दस नोट थे। नोट हाथ म रहे ग्रौर वह किसी गहरी विचारधारा म मग्न हो गया। साथ ही उसकी ग्राखें सजल हो गइ। रोकने पर भी ग्रश्रु धारा रुकी नहीं। अजीत उसी तरह पड़ा-पड़ा अपने मासिक पत्र को पढ रहा था। ग्रपनी भावना के आवेश म मुक्ति पा थोडी देर के बाद किरण ने ग्रजीत से पूछा— यह लिफाफा तुमने यहा रखा ?

नहीं तो।

"यह देखो। ससार मे सब तरह के रहते हैं ग्रजीत। मानवता मर

कर सकार से उठा नही है।'– गीता को आगे रमन हुए किरण न कहा।

रनने ! तब ता 'टकम लगना चाहिए । साथ ही अपन गाय की पुस्तक को बन्द कर वह उठ बठा।

'यह अमानत की रकम है अजीत ! अपनी नहीं है। इन्हें तारा अभी अभी यहां छोड़ गई है। न जाने क्या ?

तुम्हारे वाजिब होंगे ?'

इनन वाजिब नहीं हैं।'

कुछ तो वाजिब होंगे ही। बाकी के लिए—धनवान की लड़की है—मेहरबानी कर दी होगी।

'एसी मेहरबानी का अभ्यस्त नहीं हूं अजीत ! ऐसी दया को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। कुछ क्षण के लिए वह किसी विचारधारा म मग्न हो गया। अजीत किरण को अपने म रत देख पुन अपनी पुस्तक पढ़ने लगा। उसने सुना यह भिक्षादान है अजीत जिसे एक भिखारी ही स्वीकार कर सकता है। अपने जीवन म किरण किसी की ऐसी उदारता का स्वीकार नहीं कर सकता। इसे स्वेच्छा से ग्रहण करना अपनी ही दृष्टि मे अपना अपमान करना है। तुम्हारे मित्र का यह स्वभाव नहीं है अजीत। यदि इस प्रकार की उदारता उसे स्वीकार होती तो आज वह यहां न होता।

इसके दूसरे दिन दोपहर के बाद सुरेश एक सङ्गीत शिक्षक के साथ तारा के मकान पर पहुंचा। लालाजी इस समय मकान के भीतरी भाग म थे। उनकी प्रतीक्षा म सुरेश व सङ्गीत शिक्षक को बाहर की बैठक म बठे अधिक देरी नहीं हुई थी कि एक डाकिया तारा के नाम का एक मनीआडर' लेकर उपस्थित हुआ। सुरेश ने अपनी उत्सुकता म मनीआडर' के इस फार्म पर दृष्टि फेंकी और फिर उसे हाथ म ले वह रुपये भेजनेवाले

का संदेश पढ़ने लगा। पढ़ने के बाद उसके मुंह पर एक मुस्कराहट दौड़ गई। इसके दो चार पल के बाद ही लालाजी आ गए। सुरेश ने मनीआर्डर व रुपये लालाजी के आगे पेश कर दिए। तारा को आवाज दी गई। वह आई उस समय सुरेश ने कहा—'मेरे आन मात्र से ही अच्छा हुआ आपके रुपये आ गए वर्ना ये बदमाश तो लेकर देना सीखे ही नहीं।' —सुन कर तारा ने एक घृणामयी दृष्टि ही सुरेश की ओर प्रक्षेपित की। उसके मुंह से एक शब्द—'जी'—निकला, मगर इस एक ही शब्द में उसके हृदय की सारी घृणा प्रदर्शित हो गई थी। डाकिए के चले जाने तक तो वह किसी तरह चुप रही मगर उसके जाते ही उसने पूछा—"आप दुनिया में सबसे अधिक किसे प्यार करते हैं, सुरेश बाबू ?'

"अपनी मां को।' साथ ही वह हंस भी पड़ा। शायद प्रश्न के असङ्गतपन पर। मगर तारा ने फिर पूछा—'उन्हीं की सबसे अधिक इज्जत भी करते हैं ?'

"जरूर।'—सिवाय तारा के सब हंसने लगे।

'आप अपनी मां की कसम खाकर कह सकते हैं कि मास्टर साहब ने वास्तव में डाका डाला ?' तारा का आवेश इस समय अपनी चरम सीमा पर था। सुरेश भी आवेश में आ गया। प्रश्न किया—

'तुम्हें इस कदर उस बदमाश में दिलचस्पी क्यों है तारा ?

इसलिए कि आपके उस सम्भ्रान्त से मेरा सम्मानपूर्ण परिचय है। वे मेरे शिक्षक रहे हैं सुरेश बाबू ! मैं उनका सम्मान करती हूं।— किसी की अनुपस्थिति में किसी का अपमान न्याय और भद्रता दोनों ही नहीं हैं। सभ्यता और सद्‌व्यावहारिकता के इस नियम का तो सर्वत्र पालन होना ही चाहिए। सरकारी उच्च कर्मचारी क्या किसी संयम, शील, और शालीनता के अपवाद हैं ? और यदि हैं तो स्वयं सरकार के लिए

यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण है । मगर। पहले आप मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते ? आप उत्तर दें, सुरेश बाबू ।'

अपने पर अविश्वास करने वालों को उत्तर देने में सुरेश ने हमेशा अपना अपमान समझा है तारा ! मैं जानता हूं कि कुछ भी कह कर तुम्हें मैं अपने कहे पर विश्वास नहीं करा सकता । सिद्धान्तों का नाम और उनकी व्याख्या कोई बड़ी बात नहीं है तारा । मैं उन्हें सुनने का अभ्यस्त हूं।—मेरे पर उनका कोई असर नहीं होता ।

यह मैं समझ सकती हूं, सुरेश बाबू !'

लालाजी ने देखा कि बात फिर अन्य लगी है । उन्होंने विषय बदलते हुए कहा—"तुम्हारे लिए नए मास्टर आ गए हैं । पुराने का यह पुराण अब बन्द करो । मास्टर साहब देखिए, इसने कुछ गाना वाना भी सीखा है या यही सब तर्कबाजी । जो होना चाहिए वह तो कुछ होता नहीं और जो नहीं होना चाहिए वह बहुत कुछ हो जाता है । अब आप संभालिए ।

आज्ञा मिलते ही नए मास्टर साहब फौरन उठ खड़े हुए । तारा उन्हें अपने साथ एक दूसरे कमरे में ले चली । वहां पहुंच कर उसने उनके आगे अपनी स्वरलिपियां रख दीं । इन शिक्षक महोदय ने शुरू से अन्त तक इन स्वरलिपियों को देखा और तारा ने पुराने शिक्षक महाशय की शिक्षण विधि की प्रशंसा की ।

विराग की सिखाई हुई एक गत इन नए शिक्षक महोदय को तारा सुना रही थी कि सुरेश वहां आ पहुंचा । गत समाप्त करने पर तारा ने कहा— क्षमा कीजिएगा सुरेश बाबू यदि आपको मेरा कहा बुरा लगा हो तो ।'

बिल्कुल नहीं तारा मैं तुम्हारे प्रश्न का जवाब देने आया

हूं।'

सोच लिया, जवाब ?"—साथ ही एक हल्की मुस्कराहट उस के होठों पर खेल गई।

सोचने की जरूरत नहीं थी तारा।—लालाजी के सामने वह बहस की जगह नहीं थी। बुजुर्गों के सामने सारा सत्य वर्णन नहीं किया जा सकता। यह भी एक सांस्कृतिक व्यावहारिकता है। समझी ?

'ओह!'—उसने हंसकर अपनी हथेलियां अपने मुंह के आगे कर लीं और फिर सुनने के लिए बैठ गई। सुरेश बोला—'हंस चुकी ? अब सुनो।'

"जी।—

सुरेश बोला—"किरण ने एक तरह से डाका ही डाला था तारा! समाज के एक सम्भ्रान्त व्यक्ति को सरेबाजार ठोकरें मारना क्या उसकी इज्जत लूटना नहीं है ? तुम्हारे उस हेड मास्टर ने ऐसे एक की नहीं बल्कि अनेकों की इज्जत पर उस दिन हाथ डाला था और उसी की यह सजा उसे मिली है।'

'गर्वीले धनिकों के मनमाने जुल्म को किसी असहाय पर यदि कोई भला पुरुष होते न देख सके तो यह उस पुरुष की महानता हुई या हीनता सुरेश बाबू ? मानव की मानव के प्रति सहानुभूति बल्कि अहम् भूति भी तो इस संसार में कुछ एक महान व्यक्तियों को ही उपलब्ध है।'

परन्तु कानून को अपने हाथ में लेना उसके लिए कहां तक न्यायसंगत था तारा ?'

'कानून की ठेकेदारी तो आपकी थी। और यह ठेका भी आपको शायद उन दौलतमंदों से ही मिला था। असहाय की सहायता करना आपका कर्तव्य नहीं था। और यदि किसी व्यक्ति ने वह सहायता कर दी तो

वह मुजरिम हो गया। क्यो ?"—प्रश्न व साथ ही वह मुस्करा उठी। क्षण एक के बाद बोली—"किसी व्यक्ति म मानवोचित प्रतिक्रिया का होना ही जुम है। यही आपका कानून और न्याय है ?'

'उसे चाहिए था कि वह उन असहाय और असमर्थों की ओर से उन पर हुए जुल्म की बाबत रपट दता ग्हादत देता और जुल्म करने वालो को सरकार से सजा दिलाता।"—

'ओह ! आप जैसे ही तो रपट लिखने वाले और सजा देने दिलाने वाले हैं। और फिर जुल्म सहने वाले वे व्यक्ति समाज की सभ्यता के लिहाज से ही असहाय और असमथ थे सुरेश बाबू ! वर्ना वह नौबत ही नहीं आती। परिचितो से दूर एकान्त स्थान म हुए अपने अपमान के किस्से को घर गली और अदालत म पहुचाने व प्रकाशित करने से उन्हे फायदा ? आपको ही फिर कानून को अपने हाथ मे लेने का और सत्य को असत्य म परिवर्तित करने का क्या अधिकार था ?—ऐसा कोई वाका तो हुआ ही नही था जिसमें दस्तन्दाजी पुलिस की जरूरत थी। आप तो कानून से भी वाकिफ थ। जान पहचान थी तो आपके पास आने पर आप उन्हे फौरन अदालत में चाराजोई करने की हिदायत कर देते। न्याय विभाग अपने आप उचित सजा देता। परन्तु ऐसा न करके अपन मनमाने अधिकार क्यो बरतने शुरू कर दिए ?—ऐसा क्या अपराध उस बिचारे ने आपका किया था जिससे डाके जसे संगीन जुर्म में फसा मारने की कारवाई आपने उसके खिलाफ की ?—ऐसी क्या दुश्मनी आपकी उस अपरिचित परदेशी से थी जो पुलिस हिरासत में लेने के बाद आपने उसके साथ अमानुषिक बर्ताव किया—मार मार कर उसकी चमडी उतार ली ? पुलिस जैसी जनता की सेवक सस्था में आप जसे जिम्मेवार अफसर होन चाहिए ?—क्या अपनी अफसरी के नशे में इन्सान को इतना गिर जाना चाहिए ?'

बदमाशों को सजा देना पुलिस का वत्तव्य है तारा। यदि—'

'देना नहीं—दिलाना सुरेश बाबू ! और वह भी नाजायज नहीं सिर्फ जायज । जमाना हमेशा आपके पक्ष में नहीं रहेगा । व्यवस्था की पीठ थपथपाने वाला हाथ आज आपकी मदद में है—कल नहीं भी रह सकता है । शासक और शासित की दमन शोषण और उत्पीड़न की आंसू भरी कहानी में अभिनताओं का अपना अस्तित्व नहीं भूलना चाहिए । एक वर्ग की शान्ति और स्वैर न आपकी इन्सानियत ही आपसे छीन ली है । आज आपकी संस्था जनता की सबसे अधिक सेवक संस्था —चरम स्वार्थ-परायणता अनैतिकता अनीति और अधम के अलावा और कोई हित और धर्म जनता के लिए नहीं रखती । अपनी इज्जत से डरनेवाले समाज के साधारण पुरुष आप लोगों से भय खाते हैं और सशंकित रहते हैं । आप लोगों से सम्पर्क बढ़ाने में बल्कि बात करने तक में उन्हें भय रहता है और विश्वास तो वे आपका कभी करते ही नहीं । समाज में सामाजिक प्राणी की यह भी कोई स्थिति है ?—परन्तु यह परंपरा अच्छी नहीं है सुरेश बाबू । आपके सारे संबंधी, मित्र बुजुर्ग अजीज पुलिस के अफसर नहीं हैं । जो आज आप दूसरों के साथ करते हैं कल पुलिस वाले आपके संबंधियों के साथ वैसा ही करेंगे । अपने आवेश में इतना कहने के बाद वह कुछ क्षण चुप रही । सुरेश सुनकर हंसने लगा । नए शिक्षक महोदय की ओर इशारा करके उसने कहा— देखा आपने अपनी शिष्या को ?

उसने सुना— दूसरे देशों की पुलिस के मुकाबले में हमारी पुलिस क्या है मालूम है ? जनता पर मनमाना जुल्म करने की आपकी यह आदत एक पल में छूट जाय यदि आप लोगों से आपकी वर्दी उतरवा ली जाय—यदि व्यवस्था की सत्ता की शक्ति आपका आधार न रहे । आज आप नौकर हैं । कल ऐसा भी हो सकता है कि यह नौकरी आपकी न रहे । उस दिन यह शक्ति और गर्व आप में नहीं रहेगा, सुरेश बाबू । शान तो तब है जब इन्सान अपनी शक्ति पर कुछ कर सकने की हिम्मत रखता हो । शासन की शक्ति से अपने को सुरक्षित रख कर तो शक्तिहीन ही

केवल कायर ही अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन करते हैं।— ऐस व्यक्तियो से तो वह चरित्रहीन कही अधिक अच्छा है जो अपनी शक्ति और साहस पर कुछ करता है और उसका अच्छा बुरा नतीजा भी भोगने के लिए तयार रहता है। तारा जवाब के लिए क्षण एक के लिए चुप रही। सुरेश हस कर बोला— आज तक तो वो दिन आया नही।'

तारा बोली— मौजूदा परिस्थितियो में वह दुर्दिन किसी भी सोचने वाले आदमी का दूर नही समझना चाहिए।" आप लोगो के हृदय वज्र हो सकते हैं पर बाकी शरीर पत्थर का भी नही है। यह सब तो और इन्सानों की तरह हाड मास का ही है। आप कोई देव पुरुष नही, परन्तु बने हुए उससे भी ऊपर हैं। आपने आघात किए हैं परन्तु आघात स्वय सहे नहीं हैं सुरेश बाबू। यदि किसी बिगडे दिमाग ने अपनी निराशा की आखिरी विवशता में आपकी सत्ता की हथकडी व उसके एकान्तवास के डर से मुक्ति पा आपके मनमाने कानूनो को अपनी मर्जी के मुताबिक अपने हाथ में ले लिया और उसी सिक्के में अपना हिसाब आपको चुकाया—उस समय जानते हैं क्या होगा?—इन्सान को उसकी इतनी आखिरी मजबूरी तक नहीं घसीटना चाहिए कि उसके पास सिवाय जुर्म करने के और कोई विकल्प ही न रह जाय। निर्दोषों को मुजरिम बनाने का यह आपका शौक कभी आपको बहुत महगा पड़ेगा सुरेश बाबू।

तारा रुकी, मगर सुरेश हसने लगा। तारा के लिए उसका आवेश की इस सीमा पर सुरेश की यह हसी रहस्य और असह्य थी।

उसने कहा— आप मौजूदा परिस्थितियों की भयकरता को समझने में असमर्थ हैं सुरेश बाबू! अपनी निरकुश अव्यावहारिकता से एक दिन देश में सचमुच आप अराजकता फैला देंगे। हथकडी और कारावास का आतक उठा और उठा। यह किसी के लिए भी अच्छा न होगा। कानून बनाने वालों ने आप नहीं समझते, कुछ सोच कर ही मानवों की पशु प्रवृ

त्रिया को सजग करना मुनासिब नहीं समझा था और इसीलिए उन्होंने आपकी मनमानी सजाओं को अपने जाब्तों में जगह नहीं दी। —

यह सब तो तुम्हारे उस मास्टर ने तुम्हें खूब सिखा दिया। कुछ सगीत भी सिखाया है या नहीं? वास्तव में सुरेश तारा का आवेशमय प्रवचन सुनते सुनते तग आ गया था। विषय परिवर्तन की दृष्टि से ही उसने उससे उक्त प्रश्न अब किया था। परन्तु तारा का आक्रोश अभी शान्त नहीं हुआ था। अपने उसी आवेश में उसने उत्तर दिया—

'सगीत इतना जरूरी नहीं था।"

'क्यों मास्टर साहब? आपने तो सुना है। कुछ सीखा भी है या नहीं?" तारा से और अधिक सन्ताप में सलग्न रहने की सुरेश की इच्छा नहीं थी।

"हाथ अच्छा है। मेहनत भी हुई है।' नए शिक्षक ने उत्तर दिया।

'फिर आइए। हमारा तर्क वितर्क तो अभी वर्षों में समाप्त होगा।'—यह कह कर सुरेश व मास्टर महोदय उठ खड़े हुए। तारा भी खड़ी हो गई। उसके कमरे से जब वे बाहर निकले तो उनकी पीठ पीछे, उसके मुह से शब्द निकले— 'यह है हम भारतीयों का दुर्भाग्य!—विश्व विद्यालयों के ये शिक्षित युवक और यह गरीब और अनभिज्ञ प्रजा। सत्य और सिद्धान्तों के हत्यारे और केवल नामों के पुजारी! कथित सभ्यता न्याय और नैतिकता के रक्षक सरक्षक क्या सब ये ही लोग हैं। —अपने ही विचारों और भावों की प्रतिक्रिया में तारा खिन्न होकर एक कुर्सी पर मस्तक नीचा करके बैठ गई।

केवल कायर ही अपने यत्तित्व का प्रदशन करते हैं।— ऐसे व्यक्तियो स तो वह चरित्रहीन कही अधिक अच्छा है जो अपनी शक्ति और साहस पर कुछ करता है और उसका अच्छा बुरा नतीजा भी भोगने के लिए तयार रहता है। तारा जवाब क लिए क्षण एक के लिए चुप रही। सुरेश हस कर बोला—'आज तक तो वो दिन आया नही।

तारा बोली— मौजूदा परिस्थितियो में वह दुर्दिन किसी भी सोचने वाल आदमी को दूर नही समझना चाहिए।" आप लोगो के हृदय वज्र हो सकते हैं पर बाकी शरीर पत्थर का भी न ी है। यह सब तो और इसानों की तरह हाड मास का ही है। आप कोई न्व पुरुष नही, परन्तु बने हुए उसस भी ऊपर हैं। आपने आघात किए हैं परन्तु आघात स्वय सहे नही हैं सुरेश बाबू। यदि किसी बिगडे दिमाग ने अपनी निराशा की आखिरी विवशता में आपकी सत्ता की हथकडी व उसके एका तवास के डर से मुक्ति पा आपके मनमाने कानूनो को अपनी मर्जी क मुताबिक अपने हाथ में न लिया और उसी सिक्के में अपना हिसाब आपको चुकाया—उस समय जानते हैं क्या होगा?—इसान को उसकी अपनी आखिरी मजबूरी तक नही घसीटना चाहिए कि उसके पास सिवाय जुर्म करने के और कोई विकल्प ही न रह जाय। निर्दोषो को मुजरिम बनाने का यह आपका शौक कभी आपको बहुत महगा पड़ेगा सुरेश बाबू।'

तारा रुकी मगर सुरेश हसने लगा। तारा के लिए उसके आवेश की इस सीमा पर सुरेश की यह हसी राक्षसी और असह्य थी।

उसने कहा— आप मौजूदा परिस्थितियो की भयकरता को समझने में असमर्थ हैं सुरेश बाबू! अपनी निरकुश अत्याचारिता स तब [illegible] दम देन म सफल आप अराजकता फला देंगे। हथकडी और कारावास

त्तियो को सजग करना मुनासिब नहीं समझा था और इसीलिए उन्होंने
आपकी मनमानी सजाओं को अपने शब्दों में जगह नहीं दी। —

यह सब तो तुम्हारे उस मास्टर ने तुम्हें खूब सिखा दिया। कुछ
संगीत भी सिखाया है या नहीं? वास्तव में सुरेश तारा का आवेशमय
प्रवचन सुनते सुनते तंग आ गया था। विषय परिवर्तन की दृष्टि से ही
उसने उससे उक्त प्रश्न अब किया था। परन्तु तारा का आक्रोश अभी
शान्त नहीं हुआ था। अपने उसी आवेश में उसने उत्तर दिया—

'संगीत इतना जरूरी नहीं था।'

''क्यों मास्टर साहब? आपने तो सुना है। कुछ सीखा भी है या
नहीं?'' तारा से और अधिक संलाप में संलग्न रहने की सुरेश की इच्छा
नहीं थी।

'हाथ अच्छा है। मेहनत भी हुई है।' नए शिक्षक ने उत्तर
दिया।

फिर आइए। हमारा तर्क वितर्क तो अभी वर्षों में समाप्त
होगा।'—यह कह कर सुरेश व मास्टर महोदय उठ खड़े हुए। तारा भी
खड़ी हो गई। उसके कमरे से जब वे बाहर निकले तो उनकी पीठ पीछे
उसके मुँह से शब्द निकले— यह है हम भारतीयों का दुर्भाग्य!—विश्व
विद्यालयों के ये शिक्षित युवक और यह गरीब और अनभिज्ञ प्रजा। सत्य
और सिद्धान्तों के हत्यारे और केवल नामों के पुजारी। कथित सभ्यता
न्याय और नैतिकता के रक्षक भक्षक क्या सब ये ही लोग हैं।'—अपने
ही विचारों और भावों की प्रतिक्रिया में तारा खिन्न होकर एक कुर्सी पर
मस्तक नीचा करके बैठ गई।

केवल कायर ही अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन करते हैं।—ऐसे व्यक्तियो से तो वह चरित्रहीन कहीं अधिक अच्छा है जो अपनी शक्ति और साहस पर कुछ करता है और उसका अच्छा बुरा नतीजा भी भोगने के लिए तयार रहता है। तारा जवाब के लिए क्षण एक के लिए चुप रही। सुरेश हस कर बोला—'आज तक तो वो दिन आया नहीं।'

तारा बोली— मौजूदा परिस्थितिया में वह दुर्दिन किसी भी सोचने वाले आदमी को दूर नहीं समझना चाहिए।" आप लोगा के हृदय वज्र हो सकते हैं पर बाकी शरीर पत्थर का भी नहीं है। यह सब तो और इन्सानों की तरह हाड मास का ही है। आप कोई देव पुरुष नहीं, परन्तु बने हुए उससे भी ऊपर हैं। आपने आघात किए हैं परन्तु आघात स्वयं सहे नहीं हैं सुरेश बाबू। यदि किसी बिगडे दिमाग ने अपनी निराशा की आखिरी विवशता में आपकी सत्ता की हथकडी व उसके शक्ता तवास के डर से मुक्ति पा आपके मनमाने कानूनो को अपनी मर्जी के मुताबिक अपने हाथ में ले लिया और उसी सिक्के में अपना हिसाब आपको चुकाया—उस समय जानते हैं क्या होगा?—इन्सान को उसकी इतनी आखिरी मजबूरी तक नहीं घसीटना चाहिए कि उसके पास सिवाय जुर्म करने के और कोई विकल्प ही न रह जाय। निर्दोषो को मुजरिम बनाने का यह आपका शौक कभी आपको बहुत महगा पडेगा सुरेश बाबू।

तारा रुकी, मगर सुरेश हसने लगा। तारा के लिए उसका आवेश की इस सीमा पर सुरेश की यह हसी रामगा और असह्य थी।

उसने कहा— आप मौजूदा परिस्थितियो की भयकरता को समझने में असमर्थ हैं सुरेश बाबू! अपनी निरकुश अव्यावहारिकता से एक दिन इस देश में सबत्र आप अराजकता फैला देंगे। हथकडी और कारागार का आतंक उठा और उठा। यह किसी के लिए भी अच्छा न होगा। कानूना

त्रियों को मजाक करना मुनासिब नहीं समझा था और इसीलिए उन्होंने आपकी मनमानी मजाकों को अपने जाब्तों में जगह नहीं दी। —

'यह सब तो तुम्हारे उस मास्टर ने तुम्हें खूब सिखा दिया। कुछ संगीत भी सिखाया है या नहीं ? वास्तव में सुरेश तारा का आवेशमय प्रवचन सुनते सुनते तंग आ गया था। विषय परिवर्तन की दृष्टि से ही उसने उससे उक्त प्रश्न अब किया था। परंतु तारा का आक्रोश अभी शांत नहीं हुआ था। अपनी उसी आवेश में उसने उत्तर दिया—

संगीत इतना जरूरी नहीं था।'

''क्यों मास्टर साहब ? आपने तो सुना है। कुछ सीखा भी है या नहीं ?' तारा से और अधिक सलाप में संलग्न रहने की सुरेश की इच्छा नहीं थी।

''हाथ अच्छा है। मेहनत भी हुई है।' नए शिक्षक ने उत्तर दिया।

'फिर आइए। हमारा तर्क वितर्क तो अभी वर्षों में समाप्त होगा।'—यह कह कर सुरेश व मास्टर महोदय उठ खड़े हुए। तारा भी खड़ी हो गई। उसके कमरे से जब वे बाहर निकले तो उनकी पीठ पीछे उसके मुंह से शब्द निकले— यह है हम भारतीयों का दुर्भाग्य !—विश्व विद्यालयों के ये शिक्षित युवक और यह गरीब और अनभिज्ञ प्रजा। सत्य और सिद्धांतों के हत्यारे और केवल नामों के पुजारी। कथित सभ्यता न्याय और नैतिकता के रक्षक मस्तक क्या सब ये ही लोग हैं।'—अपने ही विचारों और भावों की प्रतिक्रिया में तारा खिन्न होकर एक कुर्सी पर मस्तक नीचा करके बैठ गई।

केवल कायर ही अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन करते हैं।— ऐसे व्यक्तियों से तो वह चरित्रहीन कहीं अधिक अच्छा है जो अपनी शक्ति और साहस पर कुछ करता है और उसका अच्छा-बुरा नतीजा भी भोगने के लिए तैयार रहता है। तारा जवाब के लिए क्षण एक के लिए चुप रही। सुरेश हस कर बोला— आज तक तो वो दिन आया नहीं।'

तारा बोली— मौजूदा परिस्थितियों में वह दुर्दिन किसी भी सोचने वाले आदमी को दूर नहीं समझना चाहिए।" आप लोगों के हृदय वज्र हो सकते हैं पर बाकी शरीर पत्थर का भी नहीं है। यह सब तो और इन्सानों की तरह हाड़ मांस का ही है। आप कोई देव पुरुष नहीं, परन्तु बने हुए उससे भी ऊपर हैं। आपने आघात किए हैं परन्तु आघात स्वयं सह नहीं हैं सुरेश बाबू। यदि किसी बिगड़े दिमाग ने अपनी निराशा की आखिरी विवशता में आपकी सत्ता की हथकड़ी व उसके एवं नवास के डर से मुक्ति पा आपके मनमाने कानूनों को अपनी मर्जी के मुताबिक अपने हाथ में ले लिया और उसी सिलसिले में अपना हिसाब आपको चुकाया—उस समय जानते हैं क्या होगा?—इन्सान को उसकी इतनी आखिरी मजबूरी तक नहीं घसीटना चाहिए कि उसके पास सिवाय जुर्म करने के और कोई विकल्प ही न रह जाय। निर्दोषों को मुजरिम बनाने का यह आपका शौक कभी आपको बहुत महंगा पड़ेगा, सुरेश बाबू।

तारा रुकी, मगर सुरेश हंसने लगा। तारा के लिए उसके आवेश की इस सीमा पर सुरेश की यह हंसी राक्षसी और असह्य थी।

उसने कहा— आप मौजूदा परिस्थितियों की भयंकरता को समझने में असमर्थ हैं सुरेश बाबू। अपनी निरंकुश अध्यावसायिकता से इस देश में सबत्र आप अराजकता फैला रहे हैं। हथकड़ी और कारावास का आतंक उठा और उठा। यह किसी के लिए भी अच्छा न होगा। कानून बनाने वालों ने आप नहीं गारन्टी कुछ सोच कर ही मानवों की पशु प्रवृ

लिया को सजग करना मुनासिब नहीं समझा था और इसीलिए उन्होंने आपकी मनमानी मजाओं को अपने जाब्तों में जगह नहीं दी। —

'यह सब तो तुम्हारे उस मास्टर ने तुम्हें खूब सिखा दिया। कुछ संगीत भी सिखाया है या नहीं ?' वास्तव में सुरेश तारा का आवेगमय प्रवचन सुनते सुनते तंग आ गया था। विषय परिवर्तन की दृष्टि से ही उसने उससे उक्त प्रश्न अब किया था। परन्तु तारा का आक्रोश अभी शान्त नहीं हुआ था। अपने उसी आवेश में उसने उत्तर दिया—

'संगीत इतना जरूरी नहीं था।'

'क्यों मास्टर साहब ? आपने तो सुना है। कुछ सीखा भी है या नहीं ?' तारा से और अधिक सलाप में सलग्न रहने की सुरेश की इच्छा नहीं थी।

'हाय अच्छा है। मेहनत भी हुई है।' नए शिक्षक ने उत्तर दिया।

'फिर आइए। हमारा तर्क वितर्क तो अभी वर्षों में समाप्त होगा।'—यह कह कर सुरेश व मास्टर महोदय उठ खड़े हुए। तारा भी खड़ी हो गई। उसके कमरे से जब वे बाहर निकले तो उनकी पीठ पीछे उसके मुंह से शब्द निकले— 'यह है हम भारतीयों का दुर्भाग्य।—विश्व विद्यालयों के ये शिक्षित युवक और यह गरीब और अनभिज्ञ प्रजा। सत्य और सिद्धान्तों के हत्यारे और केवल नामों के पुजारी ! कथित सभ्यता न्याय और नैतिकता के रक्षक सरक्षक क्या सब ये ही लोग हैं। —अपने ही विचारों और भावों की प्रतिक्रिया में तारा खिन्न होकर एक कुर्सी पर मस्तक नीचा करके बैठ गई।

केवल कायर ही अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन करते हैं ।— ऐसे व्यक्तियों से तो वह चरित्रहीन कहीं अधिक अच्छा है जो अपनी शक्ति और साहस पर कुछ करता है और उसका अच्छा बुरा नतीजा भी भोगने के लिए तैयार रहता है । तारा जवाब के लिए क्षण एक के लिए चुप रही । सुरेश हँस कर बोला— आज तक तो वो दिन आया नहीं ।'

तारा बोली— मौजूदा परिस्थितियों में वह दुर्दिन किसी भी सोचने वाले आदमी को दूर नहीं समझना चाहिए ।" आप लोगों के हृदय वज्र हो सकते हैं पर बाकी शरीर पत्थर का भी नहीं है । यह सब तो और इंसानों की तरह हाड मांस का ही है । आप कोई देव पुरुष नहीं, परन्तु बने हुए उससे भी ऊपर है । आपने आघात किए हैं परन्तु आघात स्वयं सहे नहीं हैं सुरेश बाबू । यदि किसी बिगड़े दिमाग ने अपनी निराशा की आखिरी विवशता में आपकी सत्ता की हथकड़ी व उसके एकान्तवास के डर से मुक्ति पा आपके मनमाने कानूनों को अपनी मर्जी के मुताबिक अपने हाथ में ले लिया और उसी सिक्के में अपना हिसाब आपको चुकाया—उस समय जानते हैं क्या होगा ?—इंसान को उसकी इतनी आखिरी मजबूरी तक नहीं घसीटना चाहिए कि उसके पास सिवाय जुर्म करने के और कोई विकल्प ही न रह जाय । निर्दोषों को मुजरिम बनाने का यह आपका शौक कभी आपको बहुत महंगा पड़ेगा, सुरेश बाबू ।'

तारा रुकी, मगर सुरेश हँसने लगा । तारा के लिए उसके आवेश की इस सीमा पर सुरेश की यह हँसी राक्षसी और असह्य थी ।

उसने कहा— आप मौजूदा परिस्थितियों की भयंकरता को समझने में असमर्थ हैं सुरेश बाबू ! अपनी निरंकुश अधार्मिकता से एक दिन इस देश में सर्वत्र आप अराजकता फैला देंगे । हथकड़ी और कारावास का आतंक उठा और उठा । यह किसी के लिए भी अच्छा न होगा । कानून बनाने वालों ने आप नहीं समझते कुछ सोच कर ही मानवों की पशु प्रवृ

पड़ोसमें—उनके परिचित समाज में—उनकी इस शान्ति को लेकर शान्ति नहीं बल्कि अशान्ति है, विवाद है। मिलने वाले पास पड़ोसी, सहयोगी सभी मौका मिलने पर उन पर दो एक टेढ़ी मेढ़ी उक्तियां कस ही देते हैं। किस किस का क्या क्या कह कर मुंह पकड़ें—और फिर उसका नतीजा !—यही सोच वे सब कुछ सुन लेते हैं चुप रहते हैं और अपने सहज स्वभाव के कारण सिर्फ हंस कर उनकी बातों को टाल देते हैं। परन्तु फिर भी इन्हीं सब बातों को लेकर उनके मस्तिष्क में बार-बार प्रश्न उठते हैं कि—यह सब क्यों ? क्या समाज की यही रीति है ? क्या परिचित समाज अपने परिचितों की साधारण-सी सुविधा-व्यवस्था को भी सहन नहीं कर सकता ? सभ्य समाज का यह दृष्टिकोण क्या सही है ? क्यों उसके जीवन में वे अनुरक्त हो गए हैं ? कौन उत्तर दे ? छाया अथवा केदार ? मगर वे तो दोनों चुप हैं। उनका जीवन तो एक अल्पकालिक सुविधा व्यवस्था के आधार पर चल रहा है। इस आखिरी प्रश्न का सिर्फ एक ही उत्तर हो सकता है और वह उत्तर है—समस्त बाह्य जगत को मानव अपने मन तथा भावों की भाषा में पढ़ता है और इसलिए अपने भावों के अनुकूल ही उसका दृष्टिकोण भी होता है। अपने प्रश्न का अपने से ही उत्तर पा केदार बाबू चुप हो जाते।

अपने दैनिक जीवन में भी यह प्रायः केदार बाबू सोचते थे कि वे दूसरों के प्रति व दूसरे उनके प्रति अपनी अपनी तरह के विचार बना लेते हैं। वे सोचते थे कि जान नहीं पहचान नहीं परिचय नहीं, मिलना भेंटना नहीं साथ उठना-बैठना नहीं, कभी पारस्परिक चर्चा-वार्ता नहीं कभी किसी व्यवहार का अवसर नहीं,—फिर भी स्वतः ही सामाजिक प्राणी ऐसे दूसरे व्यक्तियों के प्रति अपनी अपनी उक्तियां कहते सुने जाते हैं। वे सोचते जाते थे कि वास्तविकता क्या है कोई नहीं जानता। यह शायद, इसलिए कि वास्तविकता नाम की दुनिया में कोई चीज है ही नहीं। सब घटनाएं मानसिक हैं। मानव की वास्तविकता जहां तक बुद्धि काम

१५ :

पिछले कई महीनों से छाया केदार बाबू के घर में ही अपने जीवन के दिन बिता रही है। इन दिनों वह और केदार बाबू दो ही इस मकान में रहते हैं। तीसरा नौकर है—वही पुराना। अरुण कभी का चला गया है। केदार बाबू आजकल यथावत् अपने दफ्तर आते जाते हैं। उनकी अनिश्चित और अनावश्यक भ्रमणशीलता पिछले कई माह से समाप्त हो चुकी है और अब उनका खाना पीना बैठना उठना, आना जाना पठन पाठन सब नियमपूर्वक होता है। केदार बाबू का गृह-प्रबंध छाया ने बहुत सुंदर रूप से संभाल रखा है। घर की समस्त आवश्यक वस्तुएं अब अपने-अपने स्थानों पर पड़ी नजर आती हैं और यह परिस्थिति आती ही नहीं कि किसी आवश्यक वस्तु की पुकार होने पर पहले की तरह, बार बार बाजार भागना पड़े। केदार बाबू की आमदनी और घर खर्च का सब हिसाब छाया के पास है। अपना डाक्टरी-पेशा उस ने यहां आई उसी दिन से बंद कर रखा है। ऐसा नहीं है कि छाया घर से बाहर ही न निकलती हो। वह सिनेमा, थियेटर सरकस आदि देखने अनेक बार जाती है परन्तु प्रत्येक अवसर पर केदार बाबू उसके साथ रहते हैं। केदार बाबू और छाया दोनों को अपना यह जीवन स्वीकार है। घर में न कभी कोई झगड़ा होता है और न रोषपूर्ण विवाद ही। यहां शांति है सुविधा है। जीवन का एक सुव्यवस्थित प्रवाह है। दोनों ने अपने स्वार्थों का सामंजस्य कर लिया है।

केदार बाबू के घर में तो शान्ति है परन्तु बाहर—उनके पास

"हां !—तुम ?

'सब कुशल है अरुण !'—वह फिर मुस्करा उठी। शायद छाया की कुछ कहने की चेष्टा को देख कर अरुण बोला— मैं आ गया हूँ छाया देवी।"

तुम्हारा स्वागत है अरुण !—अरुण ने सुनकर छाया की आखों में देखा। वह फिर उसकी आरोपित दृष्टि को देखकर हसने लगी। कुछ एक क्षण छाया की आखो में अरुण अध्ययन की दृष्टि से निरतर देखने लगा। छाया की हसी उसकी बुद्धि के लिए इस समय बाधक हो रही थी। कुछ एक क्षण की अपनी कथित चेष्टा के बाद उसने प्रश्न किया—'स्वागत करती हो छाया देवी ? सत्य कहती हो न ? असत्य तो नही है ?' उसकी वाणी में गाभीर्य था और मालूम होता था कि वह अपने उक्त प्रश्नो के द्वारा कोई गभीर बात कहना चाहता है। छाया के लिए अरुण की यह गभीर भूमिका न जान क्यों अर्थहीन थी ? कारण वह तो उसी तरह मुस्करा रही थी। उसकी मुखमुद्राओं मे इस मुस्कराहट के पीछे अवश्य किसी जटिल तथ्य के अस्तित्व का सकेत था। अस्तित्व क्या था—घटना क्या थी अरुण के आने का अभिप्राय क्या था, वह क्या चाहता था वह उसे कहा तक अनुगृहीत कर सकती थी आदि प्रश्न ऐसे थे जो सभव है अरुण के लिए अर्थ रखते हो परन्तु उनके प्रति वह तो उदासीन ही थी। मगर फिर भी विनोद उसे प्रिय था।

अरुण ने सुना— निश्चय ही स्वागत करती हू अरुण। किन्तु, तुम्हें सन्देह क्यो हो रहा है ?' छाया की आरोपित दृष्टि अरुण की आखो म लगी हुई थी। मुह उसका अब भी मुस्करा ही रहा था। अरुण की आखें भुक गई। वह कोई बात कहना चाहता था, मगर, एकाएक वह उसके मुह से बाहर नहीं हो रही थी। उसने क्षण एक विरम कर कहा— मुझे यही आशा थी छाया देवी।"

करती है उसका व्यवहार है। अपनी व्यावहारिक दृष्टि से—अपने सब गों से—एक मानव दूसरे मानव को देखता है और कहता है अमुक व्यक्ति अच्छा है—अमुक बुरा है। वास्तव में, दार्शनिक की तात्विक दृष्टि से—अथवा उसमें न भी सही न कोई बुरा है—न कोई अच्छा। यही कारण था उनकी धारणा व विचार के अनुसार मानव की याद मे आज तक कोई व्यक्ति पुरुष या स्त्री—ऐसा पैदा ही नहीं हुआ जो सबके लिए अच्छा हो और किसी के लिए बुरा न हो अथवा सबके लिए बुरा हो और किसी के लिए अच्छा न हो। ऐसे व्यक्ति अवश्य पैदा हुए गिनाए जा सकते हैं जिनकी संसार के प्रति अपनी एक समान दृष्टि रही हो। ईसा मसीह मोहम्मद बुद्ध शंकर गांधी आदि महापुरुषों के नाम उक्त पिछली श्रेणी मे जो कि एक तरह से दार्शनिकों की महात्माओं की ही श्रेणी है गिनाए जा सकते हैं। उक्त महापुरुष भी अपने जीवन काल में सबके लिए सबकी दृष्टि में अच्छे न रह सके।—इसी प्रकार उनकी विचारधारा अनेकों बार उनके मस्तिष्क में प्रवाहित होती रहती।

छाया केदार के साथ उसके घर में अपनी सुविधा की दृष्टि से रह रही थी। पिछले कई माह से उसके हृदय मे आवेश भरे विविध उद्वेग उठने बन्द थे। इस समय केदार बाबू बाहर गए हुए थे। एकान्त कमरे में अकेली बैठी, इस समय वह अपने आश्रयदाता के पुराने वस्त्रों को संभाल-संभाल कर ठीक कर रही थी कि घर के नौकर रामू ने आकर इत्तला दी—अरुण बाबू आ गए हैं। छाया ने सुन कर सहज भाव से कहा—'आने दो।'

थोड़ी देर में अरुण आकर बैठ गया। छाया ने अपने हाथ का सुई डोरा एक ओर रखते हुए उसकी ओर देखा और फिर न जाने क्यों मुस्करा दी। पूछा—'कब आए?'

'आ ही रहा हूँ।'

'और सब कुशल है तो?'

छाया के उत्तर की प्रतिक्रिया म उसकी पकड अपने आप छूट गई। अपने आश्चय म सफेद हुआ वह छाया की शान्त मूर्ति को एकटक देखता लगा। उसकी वाणी बन्द हो गई। अपने आश्चय की इस मजिल पर, शायद वह गाथा भूल गया था। छाया ने अरुण की ओर क्षण एक देखा, उसी शान्त भाव से। उसने बाद वह बोली— उस दिन मैं आवेश म थी। आज तुम आवेश म हो अरुण! आवेश का उफान अच्छा नहीं होता। आवेश के वचन बिना विचारे वचन होते हैं। किसी दिन मेरी ही तरह तुम भी सोच सकते हो। उस दिन आज की घटना तुम्हें जरूर याद रहगी।

अरुण को यह आशा नहीं थी। उसने क्षण एक न लिए सोचा कि उसे धोखा हुआ। परन्तु उसके ये विचार अधिक देर तक कायम न रह सके। अगर आवेश में ही उसने बहुत अधिक बुद्धिमान बनने की का नाश की! आवेश की वह बुद्धिमानी बेवकूफी से कितनी दूर थी कितनी नजदीक थी वह नही सोच सका। अरुण ने भी कुछ विचार के बाद अपने प्रश्नों का पहलू बदला। बोला—'तुम्हें जरूरत नहीं है छाया देवी ?

'नहीं, अरुण !'

'किरण की भी ? —छाया ने अरुण की ओर देखा। उसके चेहरे पर किसी अज्ञात रोष के भाव सजग हो रहे थे। छाया ने कोई उत्तर उसके इस प्रश्न का नहीं दिया। अरुण बोला — केदार बाबू ने भी अपने किरण बाबू की खोज अब बन्द कर दी होगी। क्यों छाया देवी ? छाया ने अरुण की ओर देखा। मगर उसने सुना— 'उत्तर की आवश्यकता नहीं है, छाया देवी! उसे मैं समझ सकता हू। औरत । खर।' छाया के उत्तरों की प्रतिक्रिया के रोष में वह क्षण भर में ही कमरे से बाहर होकर सडक पर आ गया।

अरुण! अरुण!'—वह उठकर बाहर भी गई मगर, तब तक अरुण इस घर से दूर निकल गया था।

'तुम्हारी आशा सफल हुई तो ?'

'हां, छाया देवी !'—उसने अपनी प्रश्नकर्त्री की ओर एक अमित विश्वास के साथ देखा। मगर वह तो अब भी वस ही मुस्करा रही थी। वह चुप हो गया। छाया भी चुप थी। दोनों को कुछ क्षण इस चुप्पी में निकल गए। अब तक शायद अरुण ने अपना मन्तव्य कह सकने का साहस इकट्ठा कर लिया था। बोला— मैं तुम्हारे पास वापिस लौट आया हूं छाया देवी ! मैंने यहां से जाकर ही भूल की। मुझे कहीं भी चैन न पड़ा।' सुनकर छाया ने सहज भाव से कहा— क्यों अरुण ? अब तक पुनः उसने अपना सूई धागा सम्भाल लिया था। यथावत् वह वस्त्रों की अपनी मरम्मत में लग गई। अरुण बोला— याद है ? तुमने एक दिन क्या कहा था ?' छाया ने मुस्कराते हुए सिर हिला दिया। अरुण बोला— 'यही कमरा था छाया देवी ! आज की तरह उस दिन भी मैं और तुम अकेले थे। अन्तर इतना ही है कि उस दिन तुम कह रही थी आज मैं कह रहा हूं। तुम्हारे प्रस्ताव के अनुसार ही आज तुम्हें मैं अपने साथ ले जाने आया हूं। बल्कि तुम ही मुझे जहां जी चाहे ले चलो। मैं तयार हूं।'' क्या कहती हो छाया देवी ? साथ ही पास सरककर उसने छाया का हाथ भी पकड़ लिया। छाया ने हाथ छुड़ाया नहीं। छुड़ाने की कोशिश भी नहीं की। न उसने तुरन्त कोई उत्तर ही दिया। क्षण एक के बाद वह बोली— क्या कोई स्थान ठीक कर लिया है ? वह फिर मुस्करा उठी—उसी तरह। मगर अब तक अरुण अशान्त हो चुका था। उसके लिए तो छाया की मेन्भरा मुस्कराहट असह्य हुई जा रही थी। अपनी पकड़ को छाया के हाथ पर कुछ और अधिक मजबूत करते हुए उसने कहा— मैं उत्तर चाहता हूं छाया देवी। छाया ने अपने सहज भाव से उत्तर दिया— वह समय निकल गया अरुण बाबू ! अब उसकी आवश्यकता नहीं है।

छाया !— अरुण के मुंह से यह काई दबी हुई चीख थी।

छाया के उत्तर की प्रतिक्रिया म उसकी पकड अपने आप छूट गई । अपने आ चय म सफेद हुआ वह छाया की शान्त मूर्ति को एकटक देखने लगा । उसकी वाणी बन्द हो गई । अपने आश्चर्य की इस मजिल पर शायद वह भाषा भूल गया था । छाया ने अरुण की ओर क्षण एक देखा, उसी शान्त भाव से । उसके बाद वह बोली— उस दिन मैं आवेश मे थी। आज तुम आवेश म हो अरुण ! आवेश का उफान अच्छा नहीं होता । आवेश के वचन बिना विचारे वचन होते हैं । किसी दिन मेरी ही तरह तुम भी सोच सकते हो । उस दिन आज की घटना तुम्हें जरूर याद रहेगी ।'

अरुण को यह आशा नही थी । उसने क्षण एक के लिए सोचा कि उसे धोखा हुआ । परन्तु उसके ये विचार अधिक देर तक कायम न रह सके । अपने आवेश में ही उसने बहुत अधिक बुद्धिमान बनने की कोशिश की । आवेश की वह बुद्धिमानी बेवकूफी से कितनी दूर थी जितनी नजदीक थी वह नही सोच सका । अरुण ने भी कुछ विचार के बाद अपने प्रश्नो का पहलू बदला । बोला— तुम्हे जरूरत नहीं है छाया देवी ?

नही, अरुण !'

'किरण की भी ? —छाया ने अरुण की ओर देखा । उसके चेहरे पर किसी अज्ञात रोष के भाव सजग हो रहे थे । छाया ने कोई उत्तर उसके इस प्रश्न का नही दिया । अरुण बोला— केदार बाबू न भी अपने किरण बाबू की खोज अब बन्द कर दी होगी । क्यों छाया देवी ? छाया ने अरुण की ओर देखा । मगर, उसने सुना— 'उत्तर की आवश्यकता नहीं है, छाया देवी ! उसे मैं समझ सकता हू । औरत । खैर ।' छाया के उत्तरों की प्रतिक्रिया के रोप में वह क्षण भर में ही कमरे से बाहर होकर सड़क पर आ गया ।

'अरुण ! अरुण ! —वह उठकर बाहर भी गई मगर, तब तक अरुण इस घर से दूर निकल गया था ।

तुम्हारी आशा सफल हुई ना ?'

"हां, छाया देवी !"—उसने अपनी प्रश्नकर्त्री की ओर एक अमिट विश्वास के साथ देखा। मगर वह तो अब भी वैसे ही मुस्करा रही थी। वह चुप हो गया। छाया भी चुप थी। दोनों का कुछ क्षण इस चुप्पी में निकल गए। अब तक शायद अरुण ने अपना मन्तव्य कह सकने का साहस इकट्ठा कर लिया था। बोला— मैं तुम्हारे पास वापिस लौट आया हूं छाया देवी ! मैंने यहां से जाकर ही भूल की। मुझे कहीं भी चैन न पड़ा।' सुनकर छाया ने सहज भाव से कहा—"क्यों अरुण ? अब तक पुनः उसने अपना सुई-धागा सम्भाल लिया था। यथावत् वह वस्त्रों की अपनी मरम्मत में लग गई। अरुण बोला— याद है ? तुमने एक दिन क्या कहा था ? छाया ने मुस्कराते हुए सिर हिला दिया। अरुण बोला— 'यही कमरा था छाया देवी ! आज की तरह उस दिन भी मैं और तुम अकेले थे। अन्तर इतना ही है कि उस दिन तुम कह रही थी आज मैं कह रहा हूं। तुम्हारे प्रस्ताव के अनुसार ही आज तुम्हें मैं अपने साथ ले जाने आया हूं। बल्कि तुम ही मुझे जहां जी चाहे ले चलो। मैं तैयार हूं।'" क्या कहती हो छाया देवी ? साथ ही पास सरककर उसने छाया का हाथ भी पकड़ लिया। छाया ने हाथ छुड़ाया नहीं। छुड़ाने की कोशिश भी नहीं की। न उसने तुरन्त कोई उत्तर ही दिया। क्षण एक के बाद वह बोली— क्या कोई स्थान ठीक कर लिया है ? वह फिर मुस्करा उठी—उसी तरह। मगर अब तक अरुण अशान्त हो चुका था। उसके लिए तो छाया की भेदभरी मुस्कराहट असह्य हुई जा रही थी। अपनी पकड़ को छाया के हाथ पर कुछ और अधिक सशक्त करते हुए उसने कहा— मैं उत्तर चाहता हूँ, छाया देवी। छाया ने अपने सहज भाव से उत्तर दिया— वह समय निकल गया, अरुण बाबू ! अब उसकी आवश्यकता नहीं है।

'छाया !—' अरुण के मुंह से यह कोई दबी हुई चीख थी।

'मैं यही देख रहा था कि आज पूछने मे देरी क्यों हो गई। अधिक नहीं है।'

फिर भी ?"

'सो अब । बराबर कम ही हो रहा है।'

'एक दिन बिल्कुल न रहेगा, अजीत भैया !" साथ ही किरण के चेहरे पर एक ददभरी मुस्कराहट दौड़ गई। क्षण एक विरम कर उसने कहा— अच्छा है तुम मुझे मिल गए। वर्ना "

ईश्वर जो कुछ करता है अच्छे के लिए ही करता है, किरण बाबू ! इसान '

'इसान का इश्वर ऐसा ही है अजीत ! मानव की मजबूरी *का नाम ईश्वर है। मानव की शक्ति मे जो कमी दिखाई दी वह उसने* ईश्वर शब्द में भर दी। देखा है किसी ने ईश्वर को ? अच्छा है इसान का यह ईश्वर किसी को धोखा नहीं देता।—"

'दुर्दिन म मनुष्य का वही एकमात्र सहारा है, किरण।'

'दुर्दिन मे ही इसान को आश्रय की आवश्यकता होती है अजीत। यदि दुख दद नही होते तो दुनिया में ईश्वर भी नहीं होता। अपनी विवशता में इसान जब दृश्य-जगत के सारे आश्रयों को जाच कर निराश हो चुका तो उसकी बुद्धि ने एक अदृश्य आश्रय की आवश्यकता समझी जो कभी डिगे नहीं। एक बुद्धिजीवी के लिए आज भी ईश्वर एक आवश्यकता ही है, अजीत। कुछ एक क्षण रुक कर वह आगे बोला— *अपने इस आविष्कार* का फायदा किसी बुद्धि जीवी ने न आज तक उठाया और न भविष्य मे ही कभी उठाएगा। बुद्धिवादियों की साधारण सांसारिकों को यह एक देन है। अदृश्य अज्ञेय कर्ता के आश्रय मात्र से कितने ही ससारी एक विचित्र सन्तोष के साथ अपनी जीर्ण शीर्ण जीवन-नौका को तूफानी ससार-सागर से पार

: १६ :

पिछले कई दिनों से किरण बीमार है। अपने निवास-स्थान के उसी कमरे के एक कोने में उसकी चारपाई पड़ी है। चारपाई के पास एक छोटी सी मेज है जिसके सहारे ही साधारण कुर्सियां रखी हुई हैं। मेज पर कुछ दवाइयां पड़ी हैं जिन्हें अजीत अपनी किसी विचारधारा में देख रहा है। देखते देखते इन दवाइयों में से एक को उठाकर उसने उसकी बोतल को खूब अच्छी तरह हिलाया और फिर एक निश्चित नाप के अनुसार एक गिलास में पानी के मेल से उसने दवा तैयार कर ली।

किरण करवट बदले हुए खाट पर पड़ा था। अजीत ने देखा कि उसकी आंखें बन्द हैं। मेज पर हाथघड़ी पर उसने अपनी दृष्टि फेंकी। शायद, किरण के दवा लेने का समय हो गया था। एक बार फिर उसने किरण की ओर मुस्कराते हुए देखा इस आशा में कि वह स्वयं ही जाग उठे। मगर किरण की आंखें खुली नहीं। पांच सात क्षण की प्रतीक्षा के बाद आखिर उसने आवाज दी — किरण!'

किरण जाग उठा। उसने आंखें खोलीं। करवट बदल कर देखा तो अजीत दवा का गिलास लिए सामने ही खड़ा था। किरण के मलिन मुख पर मुस्कराहट दौड़ गई। अजीत ने भी मुस्करा दिया। दवा लेने के बाद अजीत ने किरण के मुंह में तापमान-यन्त्र पकड़ा दिया। एक मिनट के बाद इस तापमान-यन्त्र द्वारा बतलाई हुई किरण के शरीर की गर्मी को अजीत ने एक बिन्दुरेख में भर दिया।

'कितना है? किरण ने पूछा।

'मैं यही देख रहा था कि आज पूछने मे देरी क्यो हो गई। अधिक नहीं है।'

फिर भी ?'

'सो अश । बराबर कम ही हो रहा है।''

'एक दिन बिल्कुल न रहेगा अजीत भया !'' साथ ही किरण क चेहरे पर एक दर्दभरी मुस्कराहट दौड गई। क्षण एक विरम कर उसने कहा— अच्छा है तुम मुझे मिल गए। वर्ना ''

ईश्वर जो कुछ करता है अच्छे के लिए ही करता है, किरण बाबू ! इसान ''

'इसान का ईश्वर ऐसा ही है अजीत ! मानव की मजबूरी का नाम ईश्वर है। मानव की शक्ति मे जो कमी दिखाई दी वह उसने ईश्वर शब्द म भर दी। देखा है किसी ने ईश्वर को ? अच्छा है इसान का यह ईश्वर' किसी को धोखा नहीं देता।—''

दुर्दिन म मनुष्य का वही एकमात्र सहारा है, किरण।'

'दुर्दिन मे ही इसान को आश्रय की आवश्यकता होती है अजीत। यदि दुख दद नही होते तो दुनिया मे ईश्वर भी नहीं होता। अपनी विवशता में इसान जब दृश्य-जगत क सारे आश्रयो को जाच कर निराश हो चुका तो उसकी बुद्धि न एक अदृश्य आश्रय की आवश्यकता समझी जो कभी दिखे नहीं। एक बुद्धिजीवी के लिए आज भी ईश्वर एक आवश्यकता ही है अजीत।' कुछ-एक क्षण रुक कर वह आगे बोला—'अपने इस आविष्कार का फायदा किसी बुद्धि-जीवी ने न आज तक उठाया और न भविष्य में ही कभी उठाएगा। बुद्धिवादियों की साधारण सांसारिकों को यह एक देन है। अदृश्य अज्ञेय कर्ता के आश्रय मात्र से कितने ही ससारी एक विचित्र सन्तोष के साथ अपनी जीर्ण शीर्ण जीवन-नौका को तूफानी ससार-सागर मे पार

: १६ :

पिछले कई दिनो से किरण बीमार है। अपने निवास-स्थान के उसी कमरे के एक कोने मे उसकी चारपाई पडी है। चारपाई के पास एक छोटी सी मेज है जिसके सहारे ही साधारण कुर्सिया रखी हुई हैं। मेज पर कुछ दवाइया पडी हैं जिन्हें अजीत अपनी किसी विचारधारा म देख रहा है। देखते देखते इन दवाइयो म से एक को उठाकर उसने उसकी बोतल को खूब अच्छी तरह हिलाया और फिर एक निश्चित नाप क अनुसार एक गिलास मे पानी के मेल से उसने दवा तयार कर ली।

किरण करवट बदले हुए खाट पर पडा था। अजीत ने देखा कि उसकी आखें ब द हैं। मेज पर हाथघडी पर उसने अपनी दृष्टि फेंकी। शायद किरण के दवा लेने का समय हो गया था। एक बार फिर उसने किरण की ओर मुस्कराते हुए देखा इस आशा म कि वह स्वय ही जाग उठे। मगर किरण की आंखें खुली नही। पाच सात क्षण की प्रतीक्षा के बाद आखिर उसने आवाज दी — किरण !

किरण जाग उठा। उसने आखें खोली। करवट बदल कर देखा तो अजीत दवा का गिलास लिए सामने ही खडा था। किरण के मलिन मुख पर मुस्कराहट दौड गई। अजीत ने भी मुस्करा दिया। दवा लेने क बाद अजीत ने किरण के मुह म तापमान-यन्त्र पकडा दिया। एक मिनट के बाद इस तापमान-यन्त्र द्वारा बतलाई हुई किरण के शरीर की गर्मी को अजीत ने एक चिट्ठ में भर लिया।

'कितना है ? किरण ने पूछा।

'मैं यही देख रहा था कि आज पूछने में देरी क्यों हो गई। अधिक नहीं है।'

'फिर भी ?'

'सौ अश । बराबर कम ही हो रहा है।"

'एक दिन बिल्कुल न रहगा अजीत भया !" साथ ही किरण के चेहरे पर एक ददमरी मुस्कराहट दौड़ गई। क्षण एक विरम कर उसने कहा—'अच्छा है तुम मुझे मिल गए। वर्ना "

'ईश्वर जो कुछ करता है अच्छे के लिए ही करता है, किरण बाबू ! इसान "

'इसान का ईश्वर ऐसा ही है अजीत ! मानव की मजबूरी का नाम ईश्वर है। मानव की शक्ति मे जो कमी दिखाई दी वह उसने ईश्वर शब्द में भर दी। देखा है किसी ने ईश्वर को ? अच्छा है इसान का यह ईश्वर' किसी को धोखा नहीं देता।—"

दुर्दिन में मनुष्य का वही एकमात्र सहारा है, किरण।'

'दुर्दिन मे ही इसान को आश्रय की आवश्यकता होती है अजीत। यदि दुख दद नही होते तो दुनिया में ईश्वर भी नहीं होता। अपनी विवशता म इसान जब हृदय-जगत के सार आश्रयो को जांच कर निराश हो चुका तो उसकी बुद्धि ने एक अदृश्य आश्रय की आवश्यकता समझी जो कभी डिगे नहीं। एक बुद्धिजीवी के लिए आज भी ईश्वर एक आवश्यकता ही है, अजीत।' कुछ एक क्षण रुक कर वह आगे बोला—'अपने इस आविष्कार का फायदा किसी बुद्धि-जीवी ने न आज तक उठाया और न भविष्य म ही कभी उठाएगा। बुद्धिवादियों को साधारण सांसारिकों को यह एक देन है। अदृश्य, अज्ञेय कर्ता के आश्रय मात्र से कितने ही ससारी एक विचित्र सन्तोष के साथ अपनी जीर्ण शीर्ण जीवन-नौका को तूफानी ससार-सागर के पार

: १६ :

पिछले कई दिनो से किरण बीमार है। अपने निवास-स्थान के उसी कमरे के एक कोने मे उसकी चारपाई पडी है। चारपाई के पास एक छोटी सी मेज है जिसके सहारे ही साधारण कुर्सिया रखी हुई हैं। मेज पर कुछ दवाइया पडी हैं जिन्हे अजीत अपनी किसी विचारधारा मे देख रहा है। देखते देखते इन दवाइयो म से एक को उठाकर उसने उसकी बोतल को खूब अच्छी तरह हिलाया और फिर एक निश्चित नाप के अनुसार एक गिलास मे पानी के मेल मे उसने दवा तयार कर ली।

किरण करवट बदले हुए खाट पर पडा था। अजीत ने देखा कि उसकी आखें ब द हैं। मेज पर हाथघडी पर उसने अपनी दृष्टि फेंकी। शायद, किरण के दवा लेने का समय हो गया था। एक बार फिर उसने किरण की ओर मुस्कराते हुए देखा इस आशा म कि वह स्वय ही जाग उठे। मगर किरण की आखें खुली नहीं। पांच सात क्षण की प्रतीक्षा के बाद आखिर उसने आवाज दी — किरण!"

किरण जाग उठा। उसने आखें खोली। करवट बदल कर देखा तो अजीत दवा का गिलास लिए सामने ही खडा था। किरण के मलिन मुख पर मुस्कराहट दौड गई। अजीत ने भी मुस्करा दिया। दवा लेने के बाद अजीत ने किरण के मुह म तापमान-यन्त्र पकडा दिया। एक मिनट के बाद इस तापमान-यन्त्र द्वारा बतलाई हुई किरण के शरीर की गर्मी को अजीत ने एक बिन्दुरेख में भर लिया।

कितना है? किरण ने पूछा।

'मैं यही देख रहा था कि आज पूछने में देरी क्यों हो गई। अधिक नहीं है।'

फिर भी ?"

'सौ अस । बराबर कम ही हो रहा है।"

'एक दिन बिल्कुल न रहेगा अजीत भैया !" साथ ही किरण के चेहरे पर एक ददभरी मुस्कराहट दौड़ गई। क्षण एक विरम कर उसने कहा—"अच्छा है तुम मुझे मिल गए। वर्ना "

"ईश्वर जो कुछ करता है अच्छे के लिए ही करता है किरण बाबू ! इ मान '

"इसान का ईश्वर ऐसा ही है अजीत ! मानव की मजबूरी का नाम ईश्वर है। मानव की शक्ति में जो कमी दिखाई दी वह उसने ईश्वर शब्द में भर दी। देखा है किसी ने ईश्वर को ? अच्छा है इसान का यह ईश्वर' किसी को धोखा नहीं देता।—"

'दुर्दिन में मनुष्य का वही एकमात्र सहारा है, किरण।"

'दुर्दिन में ही इसान को आश्रय की आवश्यकता होती है, अजीत। यदि दुख दद नहीं होते तो दुनिया में ईश्वर भी नहीं होता। अपनी विवशता में इसान जब दृश्य-जगत के सारे आश्रयों को जाच कर निराश हो चुका तो उसकी बुद्धि ने एक अदृश्य आश्रय की आवश्यकता समझी जो कभी छिने नहीं। एक बुद्धिजीवी के लिए आज भी ईश्वर एक आवश्यकता ही है, अजीत। कुछ एक क्षण रुक कर वह आगे बोला— अपने इस आविष्कार का फायदा किसी बुद्धि-जीवी ने न आज तक उठाया और न भविष्य में ही कभी उठाएगा। बुद्धिवादियों की साधारण सांसारिकों को यह एक देन है। अदृश्य, अनेय कर्ता के आश्रय मात्र से कितने ही ससारी एक विचित्र सन्तोष के साथ अपनी जीर्ण शीर्ण जीवन-नौका को तूफानी ससार-सागर के

: १६ :

पिछले कई दिनो से किरण बीमार है। अपने निवास-स्थान के उसी कमरे के एक कोने में उसकी चारपाई पडी है। चारपाई के पास एक छोटी सी मेज है जिसके सहारे ही साधारण कुर्सियाँ रखी हुई हैं। मेज पर कुछ दवाइया पडी हैं जिन्हें अजीत अपनी किसी विचारधारा मे देख रहा है। देखते देखते इन दवाइयो म से एक को उठाकर उसने उसकी बोतल को खूब अच्छी तरह हिलाया और फिर एक निश्चित नाप के अनुसार एक गिलास म पानी के मेल से उसने दवा तैयार कर ली।

किरण करवट बदले हुए खाट पर पडा था। अजीत ने देखा कि उसकी आखें ब द हैं। मेज पर हाथघडी पर उसने अपनी दृष्टि फेंकी। शायद, किरण के दवा लेने का समय हो गया था। एक बार फिर उसने किरण की ओर मुस्कराते हुए देखा इस आश म कि वह स्वय ही जाग उठे। मगर किरण की आखें खुली नहीं। पाच सात क्षण की प्रतीक्षा के बाद आखिर उसने आवाज दी — 'किरण!'

किरण जाग उठा। उसने आखें खोली। करवट बदल कर देखा तो अजीत दवा का गिलास लिए सामने ही खडा था। किरण के मलिन मुख पर मुस्कराहट दौड गई। अजीत ने भी मुस्करा दिया। दवा लेने के बाद अजीत ने किरण के मुह म तापमान-यन्त्र पकडा दिया। एक मिनट के बाद इस तापमान-यन्त्र द्वारा बतलाई हुई किरण के शरीर की गर्मी को अजीत ने एक बिन्दुरेख में भर दिया।

'कितना है?' किरण ने पूछा।

किसे प्रिय नहीं होता, अजीत ? बुझने हुए दीपक को तो तुमने देखा ही होगा। किस तरह अपनी सारी शक्तियों के साथ एक बार वह जल उठता है और फिर शान्त हो जाता है। एक बार तो अच्छा होने से शायद मुझे भी कोई नहीं रोक सकता।— किरण ने इतना कह फिर मुस्करा दिया। अजीत ने देखा कि किरण की आंखों में आशा की ज्योति नहीं है। विवशता है, निराशा है। घोर निराशा। वह चुप हो गया। बड़ी देर की अपनी इस चुप्पी में उसकी विचारधारा किरण की पत्नी के विषय में बह चली। कुछ विचार के बाद वह बोला—

'भाभी जी को इस विषय में और अधिक असूचित रखना उचित नहीं मालूम होता, किरण भैया। सुनकर श्रोता के चेहरे पर कुछ विकार मय तीव्र रेखाएं दौड़ गईं। उन्हें अधिकृत करता हुआ वह बोला— तुम नहीं जानते अजीत कि वह कितनी कमजोर है ? उसमें सहन शक्ति है ही नहीं। कुछ स्वस्थ होने पर अपने साथ ही कलकत्ते चलना। चलकर वहां तुम स्वयं अनुमान लगा लेना।— आशा की एक किरण उसने अजीत के हृदय में फिर सजीव करने की चेष्टा की। अजीत चुप हो गया। मगर उसके भीतर एक धक्का लगा। उसके अन्तर को एक आघात पहुंचा। यह शारीरिक क्रिया उसकी बुद्धि की कोई हरकत नहीं थी बल्कि बुद्धि के परे की एक वस्तु थी—हृदय की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। कुछ भी किरण ने कहा हो कुछ भी उसने सोचा हो उसे आभार अच्छा नहीं मालूम हुआ। अपनी उद्विग्नता की विवशता में वह अपने बीमार साथी की मुरझाई हुई मुखाकृति को देखने लगा। उसे महसूस हुआ कि किरण के मलिन मुख पर वेदनाभरी विभिन्न रेखाएं आकर एकत्रित हो रही हैं और वह उन्हें दूर करने के लिए उनसे मुक्ति पाने के लिए, एक अन्तर्द्वन्द्व चला रहा है। किरण की आंखें इस समय शून्य के पर्दे में अपनी विचारधारा के भेदभरे दृश्य देख रही थीं। अजीत उसके इस अन्तर्द्वन्द्व को समझने में, उस द्वन्द्व की भीषणता के तल अन्तर में पहुंचने में असमर्थ था।

से जाते देख गए हैं। तब मानव की आवश्यकता उसका अभाव, वैसे ही दूसरे मानव के लिए सार्थकता है। अच्छा होता, अजीत, आज यदि तर्क के बदले विश्वास का आश्रय मैं भी ले सकता।' इस समय किरण की दृष्टि शून्य में अपने विचारों की भीषणता देख रही थी।

'आज क्या हो गया है, किरण? सुबह सुबह ही ये कैसी बातें करते हो?'

'बुद्धि चैन नहीं लेने देती अजीत।'

'जानते हो इसका नतीजा क्या होगा?'

'नतीजा?' इस प्रश्नवाचक शब्द के साथ ही उसके चेहरे पर एक अधमरी मुस्कराहट दौड़ गई। आगे बोला— अब नतीजे में क्या रखा है? जो कुछ है, सामने है। अब अन्त दूर नहीं है, अजीत।'

'आज प्रथम बार तो ताप गिरा है। तुम कैसी बातें करने लगे? जब आशा बंधी तो तुम निराश करने लगे।'—जैसे किरण ने कुछ सुना ही नहीं। वह बोला—

'मालूम होता है अब एक दिन यह बिलकुल गिर जायगा। उस समय सौ भाग था। इस समय शायद सामान्य भी नहीं है।'— अजीत ने किरण के शरीर का स्पर्श किया। पसीने से उसके हाथ गीले हो गए। बदन भी अपेक्षाकृत कुछ अधिक ठंडा ही हो रहा था। तापमान यन्त्र के द्वारा उसने उसके शरीर की गर्मी फिर नापी। वह तीन अंश और कम हो गई थी। अजीत ने बिजुरेखा पढ़ते ही किरण को नतीजा सुना दिया। भय की भावना उसके हृदय में व्याप्त हो गई।

'तुम्हें मालूम कैसा हो रहा है?' अजीत ने पूछा।

'लगता है शरीर की सारी शक्तियां स्वयं ही सोती चली जा रही हैं अजीत। उन्हें अपना घर छोड़ने का शायद भय है। आखिरी मिलन

किसे प्रिय नहीं होता अजीत ? बुझते हुए दीपक को तो तुमने देखा ही होगा। किस तरह अपनी सारी शक्तियों के साथ एक बार वह जल उठता है और फिर शान्त हो जाता है। एक बार तो अच्छा होने से, शायद मुझे भी कोई नहीं रोक सकता।— किरण ने इतना कह फिर मुस्करा दिया। अजीत ने देखा कि किरण की आंखों में आशा की ज्योति नहीं है। विवशता है, निराशा है। घोर निराशा। वह चुप हो गया। कड दम की अपनी इस चुप्पी में उसकी विचारधारा किरण की पत्नी के विषय में बह चली। कुछ विचार के बाद वह बोला—

भाभी जी को इस विषय में और अधिक असूचित रखना उचित नहीं मालूम होता, किरण भया। सुनकर श्रोता के चेहरे पर कुछ विकार मय तीव्र रेखाएं दौड़ गईं। उन्हें अविकृत करता हुआ वह बोला तुम नहीं जानते अजीत कि वह कितनी कमजोर है ? उसमें सहन शक्ति है ही नहीं। कुछ स्वस्थ होने पर अपने साथ ही घर वापस चलेंगे वहां तुम स्वयं अनुमान लगा लेना।— आशा की एक किरण उसने अजीत के हृदय में फिर सजीव करने की चेष्टा की। अजीत चुप हो गया। मगर उसके भीतर एक धक्का लगा। उसके अंतर को एक आघात पहुंचा। यह आन्तरिक क्रिया उसकी बुद्धि की कोई हरकत नहीं थी बल्कि बुद्धि के परे की एक वस्तु थी—हृदय की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। कुछ भी किरण ने कहा हो कुछ भी उसने सोचा हो उसे आभार अच्छे नहीं मालूम हुए। अपनी उद्विग्नता की विवशता में वह अपने बीमार साथी की मुरझाई हुई मुखाकृति को देखने लगा। उसे महसूस हुआ कि किरण के मलिन मुख पर वेदनाभरी विभिन्न रेखाएं आकर एकत्रित हो रही हैं और वह उन्हें दूर करने के लिए उनसे मुक्ति पाने के लिए एक अन्तर्द्वन्द्व चला रहा है। किरण की आंखें इस समय न जाने किस पर्दे में अपनी विचारधारा के भेदभरे दृश्य देख रही थीं। अजीत उसके इस अन्तर्द्वन्द्व को समझने में उस द्वन्द्व की भीषणता के तल अतल में पहुंचने में असमर्थ था।

थोड़ी देर म प्रजीत उठा और अस्पताल से दवा लाने का कहकर कमरे से बाहर चला गया। चलते समय उसने देखा कि उसके साथी किरण के चेहरे पर एक भेदभरी सूखी मुस्कराहट है। उन स्मित रेखाओं में आशा नहीं थी, प्रसन्नता नहीं थी, विश्वास नहीं था। वेदना पर केवल आवरण मात्र वे थीं।

× × ×

किरण बाबू!"

किरण ने शायद आवाज नहीं सुनी। वह मुह ढके उसी खाट पर उसी कोने म पूर्ववत सो रहा था। पुकारने वाला व्यक्ति पास गया। ओढी हुई चद्दर को सिर पर स हटा कर फिर एक बार मन्द स्वर म उसने पुकारा —'किरण बाबू!'—मगर, किरण आँखें बन्द किए सो रहा था। आगन्तुक व्यक्ति न अपना हाथ बीमार के सर पर रखा। बुरी तरह वह जल रहा था। उसने सोचा कि वह सो रहा है मगर इसी बीच किरण की आखें खुल गई। नेत्र विस्फारित कर वह आगन्तुक को देखने लगा। प्रश्न हुआ— पहचानते हैं? — किरण ने स्वीकृति म सिर हिला दिया। कुछ विरम कर बोला—

बठिए।' आगन्तुक कुछ आश्वस्त हुआ।

पुन प्रश्न हुआ—'कौन हू?"—किरण के चेहरे पर बीमार सुलभ एक हल्की हसी दौड़ गई। बोला— शोभा देवी।

शोभा खाट के पास ही एक कुर्सी खींच कर बठ गई। किरण उस की ओर एकटक देखन लगा। शोभा इसके आशय को समझ कर बोली— मैं आपको अपने साथ यहा से लिवा ले जाने को आई हू। मुझे आज ही मालूम हुआ कि आप इस तरह बीमार हैं।'

अजीत न कहा होगा?'

'हां ।'

"कहां है वह ?"

'सवारी लाने गए हैं ।'

"नहीं शोभा देवी । मैं यहीं रहूंगा । यह सब उसने अच्छा नहीं किया ।' शोभा ने किरण के इन शब्दों को सुना । कुछ सोच कर वह बोली—'सवारी वापिस चली जायगी, किरण बाबू । प्रस्ताव मजीन बाबू का नहीं था, बल्कि मेरा ही था । उन्होंने तो सिर्फ सूचना दी थी । आप निश्चिन्त रहें । मेरे यहां रहने में तो आपको कोई आपत्ति नहीं है ? —शोभा के आखिरी शब्दों में संवेदन था, अपनापन था । उस लखकर किरण बोला—' मुझे किसी में आपत्ति नहीं है शोभा देवी ! मैं चाहता था कि मेरे लिए किसी को कोई कष्ट न हो ।'

'आप सोचते हैं कि इस अवस्था में आपको यहां छोड़ कर हम सुखी रह सकेंगे ?' साथ ही उसने अपनी कोमल हथेली किरण के जलते हुए मस्तक पर रख दी ।

बर्सों के बाद पुरुष किरण ने नारी के कोमल कर का इस तरह स्पर्श पाया था । शोभा किरण के सिर को सहलाने लगी । उसकी उपस्थिति से उसके सहृदय स्पर्श से किरण को किस तरह की कितनी शान्ति मिली यह तो किरण की स्थिति में से गुजरा हुआ मनुष्य ही स्मरण कर सकता है । शोभा ने देखा कि थोड़ी ही देर में किरण की आंखों में आंसू आ छलके हैं । खुली आंखों को जोर से दबा कर किरण ने उन आंसुओं को अपनी आंखों से बाहर निकाल दिया । शोभा किरण की भेदभरी करुण कहानी को उसके मुख पर पढ़ने लगी । उसने देखा कि अनेक तरह की दर्दभरी रेखाएं आ-आ कर उस मलिन मुख पर घिर रही हैं । नारी शोभा के लिए मानवी भावों का यह दर्दभरा दृश्य थोड़ी ही देर में असह्य हो उठा । उसने अपने आंचल के छोर से बहते हुए इन आंसुओं को पोंछ दिया । संवेदना में उसके नेत्रों में

भी आर्द्रता उमड़ आई।

शोभा देवी! साथ ही किरण ने अपनी मानवी उद्विग्नता के आवेग मे देवी शोभा के हाथ को वही पकड लिया। क्षणा म उसकी यह पकड उस पर और अधिक सशक्त हो गई। आखो से आसू बह निकले। बोला— मुझे यहा से ले चलो शोभा देवी। मैं बहुत अशक्त और असहाय हूँ। मैं किसी का नही हू। मेरा कोई नही है शोभा देवी।

घबराइये नही किरण बाबू। क्षण एक विराम कर उसने प्रश्न किया— कुछ अधिक कष्ट हो रहा है? मैं छोड कर जाऊगी नही किरण बाबू? लेने आई हू लेकर जाऊगी। नही चलेंगे तो यही रह जाऊगी।

कष्ट बिल्कुल नही शोभा देवी। इस समय तो मैं बहुत सुखी हू। ऐसा सुख तो मुझे जीवन म कभी मिला ही नही। इस एहसान को मैं कभी नही भूलूगा शोभा देवी। एकमात्र तुम्ही आश्रय हो। किरण के स्वर म इस समय दद की आद्रता थी। मन और मस्तिष्क का उस स्वर म योग नही था। उसके हृदय की मात्र अभिव्यक्ति थी। उसके आंसू बराबर उसकी आखो से बह रहे थे। शोभा ने एक बार फिर किरण की अश्रुधारा को अपनी हथेली से पोछ दिया। वह उसके और समीप सरक आई। उसने महसूस किया कि इस बार की उसकी अश्रुधारा मे अपेक्षाकृत कुछ कम ऊष्मा है।

अपने अञ्चल से अपने हाथ को सुखा करके शोभा ने उसे किरण के मस्तक पर रखा। वह भी अपेक्षाकृत कुछ अधिक ठडा हो चला था। उसकी समझ म वह कुछ भी नही आया कि किरण के शरीर के तापमान म इतने शीघ्र परिवतन क्यो हो रहे हैं। अपनी इस उद्विग्नता म वह गोते खा रही थी कि अजीत आ गया। किरण के पास पहुच कर उसने उसके शरीर का स्पर्श किया। शोभा ने उसे बताया कि कुछ मिनट पहले जब वह आई थी, उसका शरीर काफी तेज जल रहा था। अजीत के पूछने पर शोभा ने बताया

कि किरण ने उसके चलने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है और साथ ही उसने आवश्यक श्रमिकों को बुलाने के लिए कह दिया है। शोभा के मरक्षण में जब तक किरण को रोगीवाहन में नीचे पहुंचाया गया, तब तक अजीत ने सारे सामान को बांध कर ठीक कर लिया। कुछ ही मिनटों का यह काम था। करीब आध घण्टे में ही तीनों सामान के साथ अपने पूर्व परिचित 'दादा' के पास उनके स्थान पर जा पहुंचे। अजीत ने देखा कि उक्त स्थान में अब हरीश की कम्पनी का कार्यालय नहीं है। प्रवेश द्वार के पास टंगा हुआ एक लेख इस बात की सूचना दे रहा था कि कम्पनी अपने कार्यालय का स्थानान्तरण प्रसिद्ध नगर कलकत्ता में कर चुकी है। बीमार के लिए व्यवस्था अब तक यहां हो चुकी थी।

× × ×

किरण को इस नए स्थान पर पहुँचे आज दूसरा दिन था। शोभा और दादा बराबर उसकी टहल चाकरी में व्यस्त रहते थे। अपने बीमार की सेवा में शोभा को पिछली रात निरन्तर जगते रहना पड़ा। जब कभी भी बीमार ने आह भरी शोभा उसके पास दौड़ी पहुँची। अपनी पुकार के प्रत्येक अवसर पर बीमार किरण ने शोभा को अपने समीप पाया। किरण की दशा अच्छी नहीं थी बल्कि चिन्ताजनक थी। ज्वर के अनेक बार के चढ़ाव उतार ने उसकी स्थिति परिस्थिति को और भी अधिक चिन्तामयी बना दिया था। दिन में हालत कुछ सुधरी थी मगर रात में ज्वर फिर एक सा तेज हो चला था। डाक्टर अब तक कई बार आ चुका था। उसके प्रत्येक आदेश का शोभा ने अक्षर अक्षर पालन किया था। शोभा के भरे चिन्हरेख में प्रदर्शित ताप से ज्वर की हर दो घन्टे की गति सुगमता से जानी जा सकती थी। दवा बराबर आदेश के अनुसार शोभा किरण को पिला देती। मल मूत्र उठाने तक का काम भी उसका ही था। पड़े पड़े जब किरण शरीर में कहीं पीड़ा का अनुभव करता शोभा वहीं उसे दबाने लगती। रात में कई बार उसने उसके पांव दबाए, सिर सहलाया आँसू पोंछे। रात्रि के आखिरी

हाथ किरण के सर पर रख लिया और उसे सहलाने लगी। उसकी हथेली किरण के हाथ को दबाने लगी। इस मांसल मिलन से किरण को संवेदना मिली सुख मिला—भौतिक और आत्मिक दोनों। किरण शोभा की आंखों में एक हारे हुए दीन मानव की तरह देखने लगा। इस तरह देखते देखते ही उसकी आंखें बन्द हो गईं। शोभा ने महसूस किया कि मेहमान की आंखों में अतीत के किसी दर्दभरे हृदय की छाया है। मन्द और क्षीण स्वर में उसने सुना— दादा! क्या पश्चाताप और क्षमा याचना के लिए भी अब समय नहीं है? कितना अन्याय मैंने किया है दादा। ओह!— पुन उसकी वाणी अशक्त हो बन्द हो गई। शोभा देखती रही। कुछ विराम के पश्चात उसने फिर सुना छाया! मुझे क्षमा करो। मुझे दुख है। पश्चाताप है। और अवसर नहीं है। समय नहीं है। जीवन की विवशता है छाया। मेरी विवशता है। प्रायश्चित। क्षमा। और अब मैं कर ही क्या सकता हूं।— पुन उसकी वाणी बन्द हो गई। आंखें तो बन्द ही थीं।

किरण के लिए मृत्यु के साथ संघर्ष में और शक्ति संचयन असम्भव सा हो रहा था।

शोभा समझ गई। उसने दादा को पास आने का संकेत किया। उनके पास आने के कुछ देर बाद किरण ने पुन आंखें खोलीं। बोला— डाक्टर की राय क्या है दादा? एक बार अच्छा होना चाहता हूं दादा। केवल एक बार। फिर यह भिक्षा कभी नहीं मांगूंगा। मगर प्रश्न होते ही शोभा के चेहरे की हवा बदल गई। अच्छे हो जायंगे किरण बाबू! आप अवश्य स्वस्थ हो जायंगे।' दादा के उत्तर के बाद शोभा ने पूछा— 'कुछ बेचैनी अधिक है किरण बाबू?' शोभा की वाणी में उसकी घबराहट स्पष्ट थी। किरण ने उत्तर में सर हिला दिया। दादा किरण की आंखों में एकटक देखने लगे। क्षण दो एक रुक कर वे बोले—'कुछ कहना चाहते हैं किरण बाबू?

'एक बार अच्छा होना चाहता हू दादा। क्या अब पश्चाताप भी नही कर सकू गा? क्या क्षमा याचना भी सभव नही है? कितना बेबस हू दादा?

'घबराइए नही। जरुर अच्छे हो जायग। शोभा और दादा न देखा कि किरण की आखें वार्ता की इस सीमा पर सजल हो चली हैं। पाषाणी वदना, यातना पिघल पिघल कर बाहर निकल रही थी। शोभा न अपने अचल से आसू पोछ दिये। शोभा तो बैठी ही थी दादा भी वही समीप आ कर बैठ गए। धीरे धीरे किरण पर वसुधी अशक्तता छा रही थी और वे उसे देख रहे थे।

× × ×

इसके दूसरे दिन अजीत छाया को लेकर दिल्ली पहुचा मगर, वे घर आए तब तक तो उन्हे बहुत देरी हो गई थी। लोग कभी के किरण को उसकी आखिरी मजिल तक पहुचा कर वापिस लौट चुके थे।